श्रमण

ŚRAMAṆA

जुलाई - सितम्बर, १९९७

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी
PĀRŚVANĀTHA VIDYĀPĪṬHA, VARANASI.

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष - ४८ अंक ७-९ जुलाई-सितम्बर, १९९७

प्रकाशनार्थ लेख-सामग्री, समाचार, विज्ञापन, सदस्यता आदि के लिए सम्पर्क करें

प्रधान सम्पादक

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

आई० टी० आई० मार्ग, करौंदी

पो० ऑ० - बी० एच० यू०

वाराणसी - २२१ ००५

दूरभाष : ३१६५२१, ३१८०४६

वार्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	: रु० ६०.००
व्यक्तियों के लिए	: रु० ५०.००
एक प्रति	: रु० १५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	: रु० १०००.००
व्यक्तियों के लिए	: रु० ५००.००

यह आवश्यक नहीं कि लेखक के विचारों से सम्पादक सहमत हों ।

श्रमण

प्रस्तुत अंक्क में

स्याद्वाद की अवधारणा : उद्भव एवं विकास

डॉ. सीताराम दुबे*

धार्मिक परिवेश में कायक्लेशप्रधान जैन धर्म जहाँ अपनी अहिंसावादी अपरिग्रही नीतियों के लिये विख्यात है; वहीं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में वह अपने "अनन्त धर्मकं वस्तु" तथा "अनेकान्तात्मकार्थ कथनं स्याद्वाद:" जैसे सिद्धान्तों से निष्पन्न अनेकान्त एवं स्याद्वाद के कारण प्रख्यात है। वस्तुतः जैन धर्म के इन दो आधार स्तम्भों को भी किसी न किसी रूप में उनके "अहिंसावाद" एवं "सूनृत सत्य" से प्रभावित एवं क्रमिक विकास का परिणाम मानना चाहिए। जैन धर्म के सामान्य अध्ययन से प्रायः सुस्पष्ट है कि इन दार्शनिक सिद्धान्तों को दार्शनिक धरातल पर व्यापक रूप में प्रस्थापित करने का प्रारम्भ प्रथम-द्वितीय शताब्दी ईसवी से हुआ और समय-समय पर १८वीं शती तक जैनाचार्यों ने अपने दार्शनिक चिन्तन एवं समन्वयी वृत्ति से इसे और अधिक प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया। इन पर अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की। अपने वर्णित रूप में स्याद्वादी सिद्धान्त का आज भी महत्त्व है; परन्तु इसका मूल बीज महावीर स्वामी की शिक्षाओं में ही सन्निविष्ट दिखाई देता है। इसके पूर्व वैदिक ब्राह्मण मान्यताओं तथा समसामयिक बुद्ध के उपदेशों में वस्तुओं में विविध धर्मों एवं रूपों की प्रतीति एवं उनकी अभिव्यक्ति की परम्परा लक्षित होती है। प्रस्तुत शोधपत्र में अनेकान्त सम्बलित स्याद्वाद की उत्पत्ति, अभिप्राय एवं विकास की व्याख्या का प्रयत्न किया गया है।

लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा, जड़-चेतन, बन्धन-मोक्ष भारतीय दर्शन की विचारणा के मूल बिन्दु हैं। इनके अस्तित्व, स्वरूप, गुणघटक मूल अथवा सञ्जात होने आदि के बारे दार्शनिक शाखाओं में मतभेद हैं। वेदान्त, सांख्य, मीमांसा आदि जहाँ सामान्य की सत्ता को स्वीकार करते हैं, वहीं बौद्ध दर्शन विशेष की। वैशेषिक दर्शन सामान्य एवं विशेष दोनों की सत्ता को स्वीकार करते हुए उनको परस्पर स्वतन्त्र मानता है और समवाय के माध्यम से उन्हें सम्बद्ध बताता है। जैन दर्शन यद्यपि वैशेषिक दर्शन की ही तरह सामान्य एवं विशेष की सत्ता को तो स्वीकार करता है; किन्तु उसकी दृष्टि में दोनों परस्पर स्वतन्त्र न हो सापेक्ष हैं और यही जैन दर्शन का

---

* उपाचार्य, प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्त्व विभाग, विक्रमविश्वविद्यालय, उज्जैन

अपना वैशिष्ट्य है । इसके अनुसार जगत् विविध द्रव्यों का संघात है और द्रव्य "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य" त्रिलक्षण युक्त होता है । गुण की दृष्टि से यह नित्य तथा पर्याय की दृष्टि से परिवर्तनशील है[२] । जीव द्रव्यार्थिक दृष्टि से शाश्वत और भावार्थिक दृष्टि से अशाश्वत है[३] । वस्तु अथवा द्रव्य में विविध गुणों की अवस्थिति आज के वैज्ञानिक प्रयोगों से भी सिद्ध है । क्वान्टम भौतिकी सिद्धान्त को इसके प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है । एक अणु जहाँ एक विशेष उपकरण से अणु अथवा सूक्ष्म रूप में दिखाई देता है, वहीं दूसरे उपकरण से तरङ्ग के रूप में लक्षित होता है । अत: जब द्रव्य विशेष ही गुण-पर्याय, सामान्य-विशेष आदि की दृष्टि से बहुधर्मी है; तब विविध द्रव्यों के संयोग से बने जगत् के बारे में कहना ही क्या ?

विविध घटकों अथवा पदार्थों, गुण-पर्याय, सामान्य-विशेष आदि की दृष्टि से एकाधिक धर्म की सापेक्ष स्वीकृति ही अनेकान्तवाद है[४]; परन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि जैन धर्म की यह अनेक-धर्मिता सर्वधर्मिता नहीं है । वस्तुओं में विविध धर्मों का परिलक्षण "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" की तरह मात्र दृष्टिभेद, अपेक्षा-भेद अथवा मन पर निर्भर रहने के कारण नहीं; वरन् वस्तुओं में अन्तर्निहित बहुधर्मिता भी है । अत: जैनियों के इस अनेकान्तात्मवाद को वस्तुवाद, विशेषकर वस्तुसापेक्षवाद से अभिहित करना युक्ति संगत होगा ।[५] इसे अनेकान्तवाद, सापेक्षवाद आदि अन्य नामों से भी जाना जाता है ।

अनेक दार्शनिक ग्रन्थों में "स्यात्" अव्यय को "अनेकान्त" का द्योतक मानते हुए अनेकान्तवाद को ही स्याद्वाद कहा गया है;[६] किन्तु जहाँ द्रव्य में एकाधिक धर्मों की स्वीकृति "अनेकान्तवाद" है; वहीं द्रव्य में "अनेकान्त" के अनुभूतिपरक ज्ञान की वाणी द्वारा अभिव्यक्ति 'स्याद्वाद।[७] अत: "अनेकान्तवाद" एवं "स्याद्वाद" को क्रमश: प्रकाश्य एवं प्रकाशक, ज्ञान एवं अभिव्यक्ति आदि के रूप में स्वीकार करना अधिक तर्कसम्मत होगा । जैन दर्शन की दृष्टि में यह स्याद्वाद अनेकान्त के अभिव्यक्ति की यथेष्ट पद्धति है । इस प्रकार "उत्पाद व्यय ध्रौव्य त्रिलक्षण परिमेय", "अनेकान्तवाद" एवं "स्याद्वाद" ये तीनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । इन्हें जैन दर्शन के आधारभूत स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया जाता है । प्रथम "उत्पाद व्यय ध्रौव्य" त्रिलक्षण के कारण जहाँ द्रव्य में "अनेकान्त" की अनुभूति होती है वहीं "स्याद्वाद" के माध्यम से उस अनुभूति की तथ्यपरक प्रस्तुति की जा सकती है ।

इस स्याद्वाद के व्युत्पत्तिपरक अर्थ, प्रयोजन आदि के बारे में जैन दार्शनिकों में मतभेद है । कतिपय भारतीय दार्शनिकों ने इसे अर्धसत्य का परिव्यापक और संशय का जनक कहा है[८]। पंडित बलदेव उपाध्याय की दृष्टि में इसे संशयवाद के रूप में नहीं लिया जा सकता । वे इसका "सम्भव" अर्थ कर रहे प्रतीत होते हैं[९] जबकि डा०

नन्दकिशोर देवराज ने "स्यात्" से "कदाचित्" का अभिप्राय लिया है।[१०] हीरालाल जैन ने "स्यात्" को "अस्" धातु के विधिलिङ्ग का अन्यपुरुष स्वीकार करते हुए "ऐसा हो" "एक सम्भावना यह भी है" जैसे दो आशयों की पुष्टि की है।[११] परन्तु इन मतों के गुण-दोषों के विवेचन तथा "स्यात्" शब्द पर समग्र रूप से विचार करने पर इसका "कथंचित्" अर्थ लेना ही अधिक वस्तुपरक लगता है।[१२]

इस प्रकार "स्यात्" का अर्थ होगा "सापेक्षिक दृष्टिकोण"। स्यादस्त्येव का अर्थ होगा - स्वरूपादि की अपेक्षा वस्तु है ही। मज्झिम निकाय के राहुलोवादसुत्त में राहुल को उपदेश देते हुए स्वयं बुद्ध भी "सिया", जिसका आशय "स्यात्" से लिया जा सकता है, का प्रयोग किया है,[१३] जहाँ वह "तेजो धातु" के दो सुनिश्चित भेदों के संज्ञान में सहायक सिद्ध हुआ है। "स्यादस्ति" वाक्य में जहाँ "अस्ति" द्रव्य अथवा उसके गुण-विशेष के अस्तित्व का प्रतिपादन करता है, वहीं "स्यात्" पद उस द्रव्य में समुपस्थित नास्तित्व और अन्य अनेक धर्मों के रहने की ओर संकेत करता है। जैन चिन्तन के अनुसार कोई भी प्रत्यय तभी सत्य हो सकता है जब वह बाह्य वस्तु के धर्म को अभिव्यक्त करे।[१४] अत: "स्याद्वाद" भाषा का वह निर्दोष प्रकार है जिसके द्वारा अनेकान्त वस्तु के परिपूर्ण और यथार्थ स्वरूप के अधिकाधिक समीप पहुँचा जा सकता है।

जैन दर्शन का यह सुस्पष्ट मन्तव्य है कि जगत् का कोई भी द्रव्यविशेष बहुधर्मी है। अत: उसका नि:शेष ज्ञान "केवलिन्" को छोड़कर किसी सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। स्वयं 'केवलिन्' भी जिस पर्याय को उसने कल भविष्यत् रूप से जाना था, आज उसे वर्तमान रूप से जानता है, अत: केवलिन् का ज्ञान भी काल भेद से बदलता रहता है क्योंकि प्रत्येक "द्रव्य" पर्याय की दृष्टि से परिवर्तनशील है।[१५] द्रव्य के सम्पूर्ण ज्ञान के बावजूद यदि सुपात्र नहीं है तो उसे समग्रज्ञान की अनुभूति नहीं कराई जा सकती। अत: समग्रज्ञान की अनुभूति और उसकी युगपत् समग्र अभिव्यक्ति अत्यन्त कठिन या प्राय: असम्भव है। किसी भी नय में प्रयुक्त "स्यात्" पद से वस्तु के उन धर्मों की ओर परोक्ष संकेत होता है जिनका उस "नय" विशेष में उल्लेख तक नहीं होता, ताकि व्यक्ति के मन में वस्तु की अनेकधर्मिता की प्रतीति बनी रहे। वह एकाङ्गी निर्णय से बचा रह सके, दूसरे, व्यक्ति मत-सम्प्रदाय के अनुभूतिजन्य निर्णय के प्रति भी यथावश्यक सम्मान व्यक्त करे।

अब यह जिज्ञासा सहज स्वाभाविक है कि "अनेकान्तवाद" एवं "स्याद्वाद" की यह अवधारणा जैन धर्म-दर्शन की अभिनव देन है अथवा इसी प्रकार की किसी पूर्व अवधारणा का संशोधित-परिवर्धित रूप। इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करते हुए ऐसा लगता है कि यदि परम्परावादी दृष्टि से विचार किया जाय तो अनेकान्तवाद की

उत्पत्ति को आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव से सम्बद्ध किया जा सकता है, जबकि कतिपय विद्वानों ने इसे २३वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ के उपदेशों में देखने की चेष्टा की है[१६] परन्तु अनेक विद्वानों ने इसके आविष्कार का श्रेय महावीर स्वामी को दिया है।[१७]

"अनेकान्तवाद" एवं "स्याद्वाद" को ऋषभदेव से सम्बद्ध किया जाना तो निःसंशय नहीं लगता; परन्तु वस्तु के स्वरूप-भेद, उनकी प्रतीति की विविधता, एक में अनेक, अनेक में एक होने तथा एक वस्तु में परस्पर विरोधी धर्म की अवस्थिति अथवा देखने की प्रवृत्ति का परिचय तो ऋग्वैदिककाल से ही मिलने लगता है। ऋग्वेद के "नासदीय सूक्त" को इसके प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें मूल सत्ता के संदर्भ में "सत्" "असत्" एवं "अनुभय" ("न सत्" न असत्" अर्थात् अवक्तव्य) इन तीन पक्षों को प्रकाशित किया गया है। इसी प्रकार उपनिषदों के अनेक मंत्रों में सत्ता से सम्बद्ध परस्पर विरोधी पक्षों को स्मरण किया गया है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में 'क्षर', 'अक्षर', 'व्यक्त' एवं 'अव्यक्त' धर्मों का उल्लेख है।[१८] इसी प्रकार "वस्तु' या 'सत्ता' के अणु से भी छोटे अथवा महत्तम होने का प्रसंग मिलता है।[१९] "तदेजति तन्नेजति"[२०], "सद्सद्वरेण्यम्"[२१] "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयम्तद्वैकआहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवा द्वितीयम् तस्मादसतः सज्जायत ॥ [२२] जैसे विषम पक्षों का परस्पर द्विधाभाव लक्षित होता है। कुछ उपनिषदों में तो "न सन्नचासत्" (अनुभय अर्थात् अवक्तव्य) का भी प्रसंग है[२३]। इन संदर्भों से प्रायः सुविदित है कि महावीर से पहले वैदिक ब्राह्मण परम्परा में सत्ता अथवा द्रव्य में परस्पर विरोधी पक्षों की प्रतीति एवं अभिव्यक्ति की परम्परा सुज्ञात थी।[२४] अतः पार्श्वनाथ के चिन्तन में द्रव्य में अनेकता की अनुभूति तथा उसे अनेक रूपों में अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति रही हो तो असम्भव नहीं; यद्यपि स्याद्वादियों के रूप में आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव की स्तुति की गई है [२५] किन्तु इसे स्याद्वाद के रूप में विकसित करने तथा व्यापक आधार देने का श्रेय महावीर स्वामी को ही दिया जाना अधिक समीचीन लगता है और तत्कालीन बौद्धिक क्रान्ति की परिस्थिति से इसकी संगति भी बिठाई जा सकती है।

ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध साहित्य के सामान्य अध्ययन से महावीर स्वामी का काल दार्शनिक चिन्तन-मनन एवं बौद्धिक-क्रान्ति के युग के रूप में उभरकर सामने आता है। इस युग में प्रवृत्तिमार्गी ब्राह्मण परम्परा, यज्ञ-प्रथा, अन्धविश्वास आदि पर अनेक आक्षेपों के प्रचलन को बढ़ावा मिलता है, आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक, जड़-चेतन आदि के बारे में बौद्धिक व्याख्या के प्रयत्न का सूत्रपात होता है। इन पर चिन्तन-मनन तथा इनको लेकर परस्पर वाद-विवाद करते विविध सम्प्रदायों का संदर्भ मिलता है। जैन[२६] एवं बौद्ध[२७] वाङ्मय में ऐसे सम्प्रदायों की अलग-अलग लम्बी सूची उपलब्ध होती है और ब्राह्मण धर्मसूत्रादि से उसकी पुष्टि भी होती है। अपनी दृष्टि एवं दार्शनिक

सिद्धान्तों को लेकर पृथक्-पृथक् समुदायों एवं सम्प्रदायों में बँटे लोगों[२८] का संघी, गणि, गणाचार्य के रूप में अपना अलग-अलग नेता होता है। इन नेताओं में अपने मत के प्रचार-प्रसार के निमित्त लोगों को अपनी बुद्धि एवं चिन्तन से प्रभावित कर अपना अनुयायी बनाने की होड़ दिखाई देती है। इस प्रकार के प्रयास में यदा-कदा कलह के वातावरण का भी प्रसङ्ग मिलता है।[२९] इन नेताओं का अपने-अपने सिद्धान्तों के साथ उल्लेख मिलता है, जिनमें बुद्ध, मंक्खलि गोशाल, सञ्जय बेलट्ठिपुत्त, पूरण कस्सप, पकुधकच्चायन, अजित केशकम्बलिन्, निगण्ठनाथपुत्त का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।[३०] बुद्ध अपने विभज्यवादी सिद्धान्त के लिये प्रसिद्ध थे। उन्होंने जड़-चेतन की व्यावहारिक धरातल पर तर्कसम्मत व्याख्या करते हुए, लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा आदि को अव्याकृत कहा।[३१] मंक्खलि गोशाल नियतिवादी तथा सञ्जय बेलट्ठिपुत्त अज्ञानवादी सिद्धान्त के लिये प्रख्यात थे। पूरण कस्सप एवं पकुधकच्चायन दोनों अक्रियावादी थे, इसके बावजूद इन दोनों के सिद्धान्तों में किञ्चित् भेद लक्षित होता है।[३२] अजित केशकम्बलिन् की उच्छेदवादी के रूप में प्रतिष्ठा थी।[३३]

तत्त्वों की व्यवहार-सम्मत युगपरक व्याख्या करने वाले इस युग में प्रत्येक प्रबुद्ध चिन्तक द्रव्य, लोक-परलोक आदि के प्रति अपनी अनूभूतिपरक व्याख्या को अधिकाधिक सत्यपरक बनाने के लिये "सत्", "असत्", "अनुभय" का यथावश्यक प्रयोग करता दिखाई देता है। गौतम बुद्ध के उक्त "विभज्यवाद" एवं "अव्याकृत" से इसका स्पष्ट संकेत मिलता है। सञ्जय बेलट्ठिपुत्त के "चतुर्भङ्ग" को इसके प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। बुद्ध जहाँ लोक-परलोक आदि से सम्बद्ध प्रश्नों को "अव्याकृत" कह कर शालीनतापूर्वक टाल देते हैं और उसे समस्याओं के समाधान के लिये अनुपयोगी बताते हैं, वहीं सञ्जय बेलट्ठिपुत्त फक्कड़ाना अंदाज में अपनी अज्ञता प्रकट करना ही अधिक उचित समझते हैं।[३४] जैन ग्रन्थों में बुद्ध के इस प्रकार के वक्तव्य पर यत्र-तत्र आक्षेप किया गया है और सञ्जय बेलट्ठिपुत्त की अन्धे के रूप में भर्त्सना की गई है।[३५]

अभिव्यक्ति-कथन के बारे में महावीर स्वामी का मत इन दोनों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक लगता है। वे जड़-चेतनादि के संदर्भ में अनेकान्त गर्भित "स्याद्वाद" का सहारा लेते हैं। उनकी दृष्टि में द्रव्यों के संघात से बने जगत् एवं जागतिक तत्वों की अपनी अलग-अलग स्वतन्त्र विशेषतायें हैं; उनमें विविध धर्मों का समावेश होता है; किन्तु व्यक्ति के ज्ञान की अपनी सीमा और अपेक्षा होती है। किसी सामान्य व्यक्ति के लिये किसी वस्तु के धर्मों का सम्पूर्ण ज्ञान और एक साथ उनकी समग्र अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अनुभूति एवं तज्जनित अभिव्यक्ति सत्य; किन्तु अपेक्षा भेद से एकाङ्गी होती है। अतः उन्होंने

वस्तुस्थिति के अधिकाधिक सत्यपरक व्याख्यान के लिये अभिव्यक्ति के पूर्व "स्यात्" पद के प्रयोग पर बल दिया और "विभज्यवाद" को भी उपयोगी माना ।[३६] इस दृष्टि से "स्याद्वाद" को "सापेक्षवाद", अनेकान्तवाद एवं विभज्यवाद भी कहते हैं।[३७]

भगवतीसूत्र में वर्णित महावीर स्वामी के चित्र-विचित्र पुंस्कोकिल विषयक स्वप्न[३८] को स्याद्वाद के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । इसके अनन्तर और सम्भवतः इसके परिणामस्वरूप उनमें "स्व-पर" सिद्धान्त के विकसित होने तथा दूसरे के मत के प्रति भी यथेष्ट सम्मान व्यक्त करने की प्रेरणा का अनुमान किया जाता है ।[३९] सूत्रकृताङ्ग के एक वक्तव्य -

नो छायए नो वि य लूसएज्जा माणं न सेवेज्ज पगासणं च ।
न यावि पन्ने परिहास कुज्जा न यासियावाय वियागरेज्जा ।।"[४०]

में स्याद्वाद का प्रथम संदर्भ मिलता है । इसमें प्रयुक्त "न यासियावाय" को "न चास्याद्वाद" के रूप में व्याख्यायित किया जाता है । स्याद्वाद के प्राकृत रूप "सियावाओ"[४१] से इसकी बहुत सीमा तक पुष्टि भी होती है।

"भङ्ग" की दृष्टि से विचार किया जाय तो भगवतीसूत्र के एक स्थल को छोड़कर, जहाँ तेइस भङ्गों का उल्लेख है,[४२] प्रारम्भिक जैन आगमों में प्रायः चार भङ्गों का ही प्रयोग हुआ है ।[४३] अतः ऐसा अनुमान होता है कि: "सत्" "असत्" "उभय", "अनुभय" ("अस्ति", "नास्ति", "अस्ति नास्ति च" और "अवक्तव्यं") ये चार भङ्ग" ही मौलिक हैं और इन्हें ही प्रारम्भ में महावीर स्वामी ने अधिक महत्त्व दिया ।[४४] जिनसे क्रमशः "सात भङ्गों" का विकास हुआ, जिन्हें भगवतीसूत्र के उक्त तेइस भङ्गों में से छाँटा जा सकता है ।[४५] यद्यपि भगवतीसूत्र में एक स्थल पर आत्मा के प्रसंग में स्वतन्त्र रूप से "सात भङ्गों" का प्रयोग देखा जा सकता है ।[४६]

कतिपय विद्वानों ने महावीर के "सप्तभङ्ग" को सञ्जय बेलट्ठिपुत्त के चतुर्भङ्ग" से विकसित मानते हुए उनको भी संशयवादी सिद्ध करने की चेष्टा की है,[४७] परन्तु महावीर स्वामी को "संशयवादी" कहना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता ।[४८] अनेक प्रसंगों से तो ऐसा अनुमान होता है कि स्वयं उन्होंने सञ्जय बेलट्ठिपुत्त के "अज्ञान" अथवा "संशय" निवारण का सफल प्रयत्न किया था । वस्तुतः उनका स्याद्वादी सिद्धान्त "अज्ञान" अथवा "संशयवाद" का समाधानात्मक उत्तर हो सकता है ।

जहाँ तक सञ्जय के "चतुर्भङ्ग" से जैन धर्म के "सप्तभङ्ग" के विकसित होने की बात है, तो जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कि प्रायः "चतुर्भङ्ग" प्रबुद्ध चिन्तकों के प्रश्नोत्तर की उपयुक्त पद्धति थी । ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ही तीन भङ्गों का स्पष्ट उल्लेख है । वस्तु अथवा सत्ता के "सत्"-"असत्" जैसे विषम-पक्षों की उपनिषदों में बहुशः विवक्षा की गई है । अतः स्वयं सञ्जय का "चतुर्भङ्ग" विकास का

परिणाम है, जिसे महावीर ने अपनी चिन्तन-परक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिये उपयोगी समझा, उसे "स्यात्" पद के प्रयोग से वस्तु की बहुधर्मिता का संप्रकाशक, सत्यसापेक्ष, अधिकाधिक वस्तुपरक एवं व्यावहारिक बना दिया। क्रमश: उन्हें "चतुर्भङ्गों" की सीमा का भी भान हुआ, उन्हें लगा कि कुछ ऐसी अनुभूतियाँ भी हैं जिनकी अभिव्यक्ति इन चतुर्भङ्गों" के प्रयोग से सम्भव नहीं, अत: उन्होंने "चतुर्भङ्ग" में "अस्ति च अवक्तव्यं च" "नास्ति च अवक्तव्यं च, "अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यं च" इन तीन नवीन नयों का समावेश कर उसे "सप्तभङ्गी" बना दिया। इस प्रकार जहां बुद्ध का विभज्यवादी सिद्धान्त अपने मूल रूप में यथावत् रहा, सञ्जय बेलट्ठिपुत्त का चतुर्भङ्ग" संशयवाद का उद्भावक बना, एवं महावीर स्वामी का विभज्यवादी सिद्धान्त "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य" की अनुभूतिजन्य "अनेकान्त" के माध्यम से विकसित होता हुआ "स्याद्वाद" के रूप में, वस्तु के अभिप्रेत धर्म के साथ ही सन्निहित अन्य धर्म का भी सूचक, सत्यपरक अभिव्यक्ति का समुचित माध्यम बन गया।

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, जैनियों की स्याद्वादी अवधारणा महावीर के "अहिंसा" एवं "सूनृत सत्य" विषयक सिद्धान्त के अनुकूल थी। दूसरे की भावना को कर्म से ठेस पहुंचाने की तो बात ही अलग, मन एवं वाणी से भी कष्ट देना दोषप्रद था। उनके युग में धार्मिक-दार्शनिक सिद्धान्तों को लेकर प्राय: विविध सम्प्रदाय के लोग परस्पर वाद-विवाद करते रहते; अपने पक्ष का येन-केन प्रकारेण मण्डन तथा दूसरे के सिद्धान्तों का खण्डन ही विविध सम्प्रदायों का लक्ष्य था। ऐसी परिस्थिति में सम्प्रदायों में परस्पर सौमनस्य एवं सद्भाव स्थापित करने तथा स्वयं के संघ में सम्मिलित विविध मत-बुद्धि के अनुयायियों में सौहार्द्र-स्थापन के लिये महावीर स्वामी ने इस स्याद्वाद सिद्धान्त का अस्त्र के रूप में प्रयोग किया और जिसके माध्यम से उन्हें धार्मिक एवं सामाजिक सुख-स्थापन में बल मिला। महावीर के इस स्याद्वाद सिद्धान्त की समय-समय पर युगसापेक्ष व्याख्या और पुनर्व्याख्या हुई, बहुविध वृद्धि एवं समृद्धि हुई।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट है कि महावीर स्वामी के बाद जैन धर्म का इतिहास बहुत कुछ जैन संघ एवं दर्शन का इतिहास है। मौर्य शासक चन्द्रगुप्त जैन धर्मावलम्बी था। उसके समय में आयोजित संगीति से जैन धर्म संघ में अनेक मानकों की स्थापना हुई, दिगम्बर एवं श्वेताम्बर इन दो सम्प्रदायों में जैन संघ का विभाजन हुआ। इन दोनों सम्प्रदायों ने महावीर स्वामी की शिक्षाओं की समसामयिक व्याख्या का प्रयास किया; स्वयं जैन सम्प्रदाय में हो रहे उपविभाजन से समन्वयी वृत्ति की वृद्धि की ओर आकर्षण बढ़ा यद्यपि अशोक बौद्ध था, परन्तु सम्भव है उसके "समवायो एव साधुकिति अत्रमत्रस धमं सुणारू च सुसुंसेर च"[४१] जैसे उद्घोष से जैनियों में सद्भाव-

स्थापन के प्रयास को अधिक बल मिला हो तथा जैन धर्मावलम्बी धर्म सहिष्णु शासक खारवेल के प्रोत्साहन[५०] से भी इस प्रकार की वृत्ति को प्रोत्साहन मिला हो।

प्रारम्भिक आगम ग्रन्थों में जहां स्याद्वादी अभिव्यक्ति में "चतुर्भङ्ग" के प्रति विशेष आग्रह है, वहीं प्रथम शती ईसा पूर्व के अन्तिम चरण में "सप्तभङ्गी नय" का प्राधान्य लक्षित होता है। विक्रम की प्रथम शती में हुए आचार्य कुन्दकुन्द के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "पञ्चास्तिकाय" को हम इसके प्रमाण के रूप में उद्धृत कर सकते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने इसमें न केवल सप्तभङ्गों का विश्लेषण किया है वरन् "सप्तभङ्ग" पद का भी सुस्पष्ट उल्लेख किया है।

विक्रम की तीसरी से आठवीं शताब्दी तक जैन धर्म के विविध पक्षों की दार्शनिक व्याख्यायें की गईं। अनेक अभिनव प्रतिमानों की स्थापना हुई। कतिपय जैन विचारकों ने इस अवधि-विशेष को जैन दर्शन के क्षेत्र में "अनेकान्त-स्थापन-काल" के रूप में अभिहित किया है।[५१] इस युग के प्रारंभिक चरण में नागार्जुन, वसुबन्धु, असङ्ग, दिङ्नाग जैसे बौद्ध दार्शनिकों का उदय हुआ, उनके प्रभाव से स्वयं बौद्ध एवं बौद्धेतर दार्शनिक शाखाओं में खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया में तीव्रता आई है। इसी अवधि में जैन आचार्यों में आचार्य समन्तभद्र एवं सिद्धसेन ने अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं तर्कणाशक्ति से महावीर स्वामी की शिक्षाओं की तर्क-सम्मत व्याख्या करते हुए अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की, सिद्धान्तों के शुष्क बौद्धिकवादी युग में वितण्डावाद से परे हट समन्वय एवं सहिष्णुता को बढ़ावा देने का प्रयत्न किया और इसके लिये अनेकान्त पोषित स्याद्वाद को माध्यम बनाया।[५२]

आचार्य समन्तभद्र (विक्रम की द्वितीय-तृतीय शती) ने "आप्तमीमांसा", "युक्त्यनुशासन", "वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र" जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना कर उनमें स्याद्वाद के सप्तभङ्गी सिद्धान्त की अनेक दृष्टियों से विवेचना की है। उन्होंने एकान्तवाद की आलोचना एवं अनेकान्तवाद की प्रस्थापना का प्रयास किया। स्याद्वाद के लक्षण को प्रमाणित किया। उन्होंने "सुनय" "दुर्नय" की व्यांख्या की, तथा अनेकान्तवाद को और वैज्ञानिक एवं प्रभावी बनाया।

विक्रम की ४-५वीं शती में हुए जैन आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने 'नय' और 'अनेकान्तवाद' की मौलिक व्याख्या कर "स्याद्वाद" एवं "अनेकान्तवाद" को न केवल जैन दर्शन के लिए अनिवार्य बना दिया, वरन् अनेकान्तवाद के अभाव में जागतिक व्यवहार को ही असम्भव कहा। इस दृष्टि से उनका यह वक्तव्य -

"जेण विणा लोगस्स ववहारोवि सव्वथा न निव्वडये।
तस्य भुवणेक गुरुणो णमोऽणेगंतवायस्स।"

अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। उन्होंने समसामयिक दार्शनिक वादों को जैन दर्शन में समन्वित करने का प्रयत्न किया, उसे और अधिक व्यापक बनाया। प्रचलित

विविध सम्प्रदायों में समता बोध एवं सहिष्णुता के विकास का प्रयास किया। सम्भव है उनके इस प्रकार के प्रयास में धर्मसहिष्णु एवं समन्वयवादी गुप्त-शासकों का भी सहयोग मिला हो। यद्यपि इस प्रकार के मत प्रतिष्ठापन के लिये पुष्ट प्रमाणों की अपेक्षा है।

विक्रम की आठवीं से सत्रहवीं शती तक का समय "प्रमाणस्थापन काल" के रूप में अभिहित किया जाता है।[५३] इस युग में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्यों ने अनेकान्त एवं स्याद्वाद पर अनेक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की। आचार्य अकलङ्कदेव ने समन्तभद्र की आप्तमीमांसा पर टीका लिखी और लघीयस्त्रय, न्यायविनिश्चय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने अपने ग्रन्थ लघीयस्त्रय के प्रथम श्लोक में ही तीर्थङ्करों की स्याद्वादी के रूप में श्रद्धापूरित स्तुति कर स्याद्वाद को जैन दर्शन का अभिन्न अङ्ग बनाने की सफल चेष्टा की।[५४]

इसी प्रकार दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों-वादीभसिंह (विक्रम की आठवीं शती), विद्यानन्दि (वि.९वीं शती), देवसेन वसुनन्दि (१०-११वीं शती), सोमदेव (वि.११वीं शती) आदि द्वारा भी क्रमश: "स्याद्वादसिद्धि", "अष्टसहस्री", "नयचक्र", "आप्तमीमांसा वृत्ति" "स्याद्वादोपनिषद्" जैसे अतिविशिष्ट ग्रन्थों की रचना की गई। विक्रम की ११-१२ वीं शती में हुए परमारकालीन जैनाचार्य प्रभाचन्द्र ने "प्रमेयकमलमार्तण्ड" (परीक्षामुख टीका) एवं "न्यायकुमुदचन्द्र" (लघीयस्त्रय टीका) जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन कर दार्शनिक धरातल पर स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद को प्रतिष्ठित करने का सफल उद्योग किया। उनके इस प्रकार के प्रयत्न को भी परिस्थितिजन्य कहा जा सकता है। सम्प्रदाय में बढ़ रही भेद की प्रवृत्ति पर, स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति लोगों की आस्था जगाकर अथवा "अनन्तधर्मात्मकं वस्तु" का स्मरण कराकर, अंकुश लगाने का यह महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हो सकता है। दिगम्बर सम्प्रदाय के ही एक अत्यन्त प्रतिभाशाली आचार्य विमलदास ने विचारों के समन्वय की महत्त्वपूर्ण चेष्टा की। उनकी रचना "सप्तभङ्गीतरंगिणी" नव्य शैली की अकेली एवं अनूठी प्रस्तुति है।[५५]

इस अवधि में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनेक युग-प्रधान आचार्यों ने भी अनेकान्त एवं "स्याद्वाद" से सम्बद्ध अनेक विशिष्ट ग्रन्थों की रचना का उपयोगी प्रयास किया। इस दृष्टि से हरिभद्र (वि० ८वीं शती) के "अनेकान्तजयपताका" एवं "स्याद्वादकुचोद्य-परिहार"; वादिदेवसूरि (१२वीं शती) के "स्याद्वादरत्नाकर"; रत्नप्रभसूरि (१३वीं शती) के स्याद्वादरत्नाकरावतारिका"; मल्लिषेण (१४वीं शती) के "स्याद्वादमञ्जरी" जैसे ग्रन्थों का अपना विशिष्ट स्थान है। ये ग्रन्थ अपने विषय के महत्त्वपूर्ण सार्थक प्रयास हैं।

इसके अनन्तर १८वीं शती में यशोविजय ने "स्याद्वादमञ्जरी" पर "स्याद्वादमंजूषा"

नामक टीका लिखी और यशस्वतसागर ने "स्याद्वादमुक्तावली" की रचना की। "अनेकान्तवाद" एवं "स्याद्वाद" पर विवक्षा अथवा ग्रन्थ रचना का क्रम आज भी प्रवर्धमान है और धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक सुख-शान्ति, वैचारिक समन्वय के लिये इसे अत्यन्त उपयोगी कहा जा सकता है।

इस प्रकार जैन धर्म दर्शन की स्याद्वादी अवधारणा से यह सुविदित है कि "स्याद्वाद" न केवल जैन दर्शन की महत्त्वपूर्ण निधि है, वरन् विचार-समन्वय, सहिष्णुता, समता बोध आदि की दृष्टि से समस्त भारतीय दर्शन में इसका विशिष्ट स्थान है और यह भारतीय संस्कृति को जैन धर्म दर्शन की अनुपम देन है। भारतीय विचारणा में प्रारम्भ से ही वस्तुनिहित धर्मों की प्रतीति को "सत्", "असत्" "न सत् न असत्" जैसे विरोधाभासी पदों से विज्ञापित किया जाता रहा है, क्रमशः इस प्रकार की अभिव्यक्ति ने वैचारिक मतभेद और ऊहापोह की स्थित को जन्म दिया। "सत्ता" अथवा "द्रव्य" में इस द्विधाभाव के कारण अपने निर्णय को "सत्य" एवं दूसरे को "असत्य" कहने के प्रति आग्रह बना। एक ही तत्त्व में विविध धर्मों की अभिव्यक्ति के कारण इस प्रकार के आग्रह-पूर्वाग्रह के लिये अवकाश भी था। अतः कलह का वातावरण बना। महावीर स्वामी ने अपने तत्व-चिंतन के प्रकाश में समसामयिक वृत्तियों पर मनन किया, सामाजिक सुख-शांति, साम्प्रदायिक सद्भाव, वैचारिक समन्वय के लिये इस प्रकार की प्रवृत्ति को घातक माना और यह उद्घोष किया कि वस्तु अनन्तधर्मी है। अतः वस्तु में निहित सभी धर्मों की अनुभूति और उसका युगपत् समग्र प्रकाशन सम्भव नहीं। यद्यपि किसी वस्तु को लेकर विचार करने वाले सभी लोगों का अनुभूतिजन्य निर्णय सत्य हो सकता है, अतः किसी के निर्णय की न तो अवमानना की जा सकती है, न ही उसे असत्य ठहराया जा सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्णय को सत्य बताने का अधिकार है तथा दूसरों के निर्णय के प्रति सम्मान व्यक्त करना कर्तव्य और इसके निर्वाह के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निर्णयात्मक अभिव्यक्ति से पूर्व "स्यात्" पद का संयोग अपेक्षित है। प्रथमतः तो उन्होंने इसके लिये पूर्व प्रचलित चतुर्भङ्गों को ही अपना लिया; उनमें "स्यात्" पद का प्रयोग कर सत्यपरक बना दिया। कालान्तर में अभिव्यक्ति की समग्रता के लिये तीन अन्य नयों को उसमें समाविष्ट कर "सप्तभङ्गी" बना दिया। विक्रम की द्वितीय-तृतीय शती में "सप्तभङ्गी" का ही अधिक प्रभाव रहा। धर्म के दर्शन के रूप में क्रमिक परिणति के साथ ही साथ आचार्य समन्तभद्र, सिद्धसेन आदि के प्रयत्न से समसामयिक आवश्यकता के अनुरूप साम्प्रदायिक सद्भाव, वैचारिक एवं दार्शनिक समन्वय के दार्शनिक जगत् में "अनेकान्त" एवं "स्याद्वाद" को प्रतिष्ठित किया गया। आचार्य प्रभाचन्द्र, मल्लिषेण, विमलदास आदि ने इसे और अधिक पल्लवित एवं पुष्पित किया। इस प्रकार "सप्तभङ्गी नय" "स्याद्वाद" का और "स्याद्वाद" तथा "अनेकान्तवाद" जैन दर्शन का पर्याय बन गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

१. तुलनीय- विजयकुमार, अनेकान्तवाद और उसकी व्यावहारिकता, "श्रमण" सं० सागरमल जैन, वर्ष १९९६, अंक १०-१२, वाराणसी, पृ. २२-२३
२. न्यायदीपिका, सं० पण्डित दरबारीलाल कोठिया, वीर सेवा मन्दिर ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४, सहारनपुर १९९५, अध्याय ३, श्लोक७६, "अनेके अन्ता धर्माः सामान्य विशेष पर्यायाः गुणाः यस्येति सिद्धाऽनेकान्तः।
३. (i) तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, ५.३८, "गुण पर्यायवद्द्रव्यम्"
(ii) भगवतीसूत्र, ७,२,५
४. "अनेकश्चासो अन्तश्च इति अनेकान्तः" रत्नाकरावतारिका, पण्डित दलसुखभाई मालवणिया, लालभाई दलपतभाई ग्रन्थमाला-१६, अहमदाबाद, पृ. ८९,
५. सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा धीरेन्द्रमोहन दत्त, भारतीयदर्शन, (हिन्दी अनुवाद) पृ. ५५ ।
६. "स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकं ततः स्याद्वादोऽनेकान्तवादः ।" स्याद्वादमञ्जरी ५।
७. "अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः ।" लघीयस्त्रय टीका, ६२ ।
८. तुलनीय, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, इन्डियन फिलासाफी, जिल्द१, पृ० ३०५-०६ ।
९. बलदेव उपाध्याय, भारतीयदर्शन, १९७९, पृ० १७३ ।
१०. हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल १९६२, पृ० २४९ ।
१२. तुलनीय, महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, जैनदर्शन, १९८५, पृ० ५१८ आदि; मोहनलाल मेहता, जैनधर्मदर्शन, १९७३, पृ०३४३ एवं ३५८.
१३. मज्झिमनिकाय, राहुलोवादसुत्त ।
१४. "यथावस्थितार्थव्यवसायरूपं हि संवेदनं प्रमाणम् ।" प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ. ४१
१५. तुलनीय, मेहता, जैन धर्म दर्शन, ३९२
१६. बलेदव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ. ९१
१७. तुलनीय, महेन्द्र कुमार, जैन दर्शन, पृ. ५९-६०, ५५३-५४
१८. श्वेताश्वतरोपनिषद्, १.८
१९. वही, ३.२०
२०. ईशावास्योपनिषद् , १.५
२१. मुण्डकोपनिषद् , २.२. १
२२. छान्दोग्योपनिषद्, ६.२.१

२३. श्वेताश्वतरोपनिषद्, ४.१८.

२४. "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।" ऋग्वेद, १,१६४,४६

२५. "धर्मतीर्थङ्करेभ्यस्तु स्याद्वादिभ्यो नमः ।
ऋषभादि महावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ।
अकलङ्कदेव, लघीयस्त्रय, श्लोक ११

२६. हर्मन याकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दी ईस्ट, जिल्द २२, पृ. १२८, पाद टिप्पणी १; जिल्द ४५. पृ. ३१५-१९; ठाणांगसुत्त, पृ०९४ अ, ३४२ ब ।

२७. दीघनिकाय, "सामञ्ञफलसुत्त"; विनय चुल्लवग्ग, ५.१०.१२ ; अङ्गुत्तरनिकाय, ५.२८.८-१७ (निगण्ठसुत्तादि); देखें, रीस डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, १९५९, पृ० ६१, डायलॉग्स ऑव दी बुद्ध, जिल्द २, सेक्रेड बुक्स ऑव दी बुद्धिस्ट, पृ. २२०-२२ आदि ।

२८. उदान, जयचन्दवग्ग से इनके संगठन पर किञ्चित् प्रकाश पड़ता है । "सम्बहुला नानातित्थिया समन ब्राह्मण परिब्बाजका...... नानातित्थिका, नानाखन्तिका, नाना रुचिका, नाना दित्थि निस्सय निस्सिता", देखें, स्टेन्थल का उदानम्, पृ०६६-६७

२९. मज्झिमनिकाय, सच्चकसुत्त, उपालिसुत्त, सीहसेनापतिसुत्त आदि ।

३०. दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुंत्त ।

३१. दीघनिकाय, पोट्ठपादसुत्त, अङ्गुत्तरनिकाय, दिट्ठिवज्जसुत्त; १०.२.५.४. महावंश, तृतीय संगीति का विवरण, विशेष ५.२३३.३५, ५.२७१ आदि ।

३२. गोविन्दचन्द पाण्डे, स्टडीज इन दी ऑरिजिन्स ऑव बुद्धिज्म, १९५७, पृ०३४७-४८, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, १९७६, पृ. ३५,३६

३३. सीताराम दुबे, बौद्ध संघ का प्रारम्भिक विकास, १९८८, पृ. ४० और आगे, पृ. ५७-५८

३४. महेन्द्रकुमार 'न्यायाचार्य', जैन दर्शन, पृ. ५५२; राहुल सांकृत्यायन, दर्शनदिग्दर्शन, पृ० ४९१

३५. सूत्रकृताङ्ग, १.१२,

३६. "भिक्खू विभज्जवायं च वियागरेज्जा ।" वही, १.१४.२२,

३७. मेहता, जैन धर्म दर्शन, पृ. ३३७

३८. भगवतीसूत्र, १६.५.३

३९. तुलनीय, मेहता, जैन धर्म दर्शन, पृ. ३३४

४०. सूत्रकृताङ्ग, १.१४.१९

४१. प्रश्नव्याकरण, ८.२.१०७

४२. भगवतीसूत्र, १२.१०.४६९

४३. वही, १.१.१७, १.९.७४, १३.७.४९३ आदि।
४४. मेहता, जैन धर्म दर्शन, पृ. ३६५
४५. जैनतर्कवार्त्तिक वृत्ति, प्रस्तावना, पृ.६४४-४८
४६. भगवतीसूत्र, १२.१०.४६९
४७. सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, पृ. ४९१
४८. तुलनीय, चट्टोपाध्याय एवं दत्त, भारतीय दर्शन, पृ. ५५; मेहता, जैन धर्म दर्शन, पृ. ३६३, महेन्द्रकुमार, जैन दर्शन, पृ. ६१६, अपने इस ग्रन्थ के "स्याद्वाद मीमांसा" नामक अध्याय में जैन स्याद्वाद पर लगे आक्षेपों का सतर्क खण्डन किया है।
४९. देखें, अशोक का द्वादश शिला-प्रज्ञापन
५०. देखें, खारवेल का हाथी गुंफा अभिलेख
५१. महेन्द्रकुमार 'न्यायाचार्य', जैन दर्शन, पृ० १५
५२. वही, पृ. २१ और आगे
५३. वही, पृ. १५
५४. वही, पृ. ४ एवं ६२५
५२. वही, पृ. २४ और आगे तथा पृ. ६२३ और आगे।

❖

ब्रह्माणगच्छ का इतिहास

शिवप्रसाद*

निर्ग्रन्थ परम्परा के श्वेताम्बर आम्नाय में पूर्वमध्यकाल में प्रकट हुए विभिन्न चैत्यवासी गच्छों में ब्रह्माणगच्छ भी एक है। जैसा कि इसके अभिधान से स्पष्ट होता है, यह गच्छ अर्बुदगिरि के निकट स्थित ब्रह्माण[१] (वर्तमान वरमाण) नामक स्थान से अस्तित्व में आया। ब्रह्माणगच्छ से सम्बद्ध बड़ी संख्या में अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त होते हैं जो वि० सं० ११२४/ई० सं० १०७८ से लेकर वि० सं० १५७६/ ई० सं० १५२० तक के हैं। अभिलेखीय साक्ष्यों की तुलना में इस गच्छ से सम्बद्ध साहित्यिक साक्ष्य संख्या की दृष्टि से प्रायः नगण्य ही हैं।

ब्रह्माणगच्छ से सम्बद्ध सर्वप्रथम साहित्यिक साक्ष्य है **नवपदप्रकरण** की वि०सं० ११९२/ई० सं० ११३६ में लिखी गयी दाताप्रशस्ति[२], जिसमें इस गच्छ के विमलाचार्य के एक श्रावक शिष्य द्वारा उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि तैयार करवा कर वहां विराजित साध्वियों को पठनार्थ दान में देने का उल्लेख है। चूंकि इस प्रशस्ति में ब्रह्माणगच्छ के एक आचार्य के नामोल्लेख के अतिरिक्त कोई अन्य ऐतिहासिक सूचना प्राप्त नहीं होती, फिर भी इस गच्छ से सम्बद्ध और अद्यावधि उपलब्ध प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य होने से यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है।

ब्रह्माणगच्छ से सम्बद्ध द्वितीय साहित्यिक साक्ष्य है वि० सं० १२१७/ ई० स० ११६१ में लिखी गयी **चन्द्रप्रभचरित** की दाताप्रशस्ति[३] ; जिसके अन्त में इस गच्छ के पं० अभयकुमार का नाम मिलता है।

भवभावनाप्रकरण की वि० सं० १२८० में लिखीं गयी दाता-प्रशस्ति[४] के अनुसार ब्रह्माणगच्छ की चन्द्रशाखा में देवचन्द्रसूरि हुए। उनके पट्टधर मुनिचन्द्रसूरि हुए, जिन्होंने वि० सं० १२४०/ ई० स० ११८४ में पद्रग्राम (पादरा) में उक्त ग्रन्थ की प्रथम बार वाचना की। मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य वाचनाचार्य अभयकुमार हुए जिन्होंने वि० सं० १२४८ में द्वितीय बार इस ग्रन्थ की वाचना की। इसी प्रकार वि० सं० १२५३, १२६५ और १२८० में भी इस ग्रन्थ की वाचना होने का इस प्रशस्ति में उल्लेख है। प्रशस्ति के अन्त में पं० अभयकुमारगणि को उक्त ग्रन्थ भेंट में देने की बात कही गयी है।[५]

इस प्रकार उक्त दोनों प्रशस्तियों में पं० अभयकुमार का नाम समान रूप से मिलता है। यद्यपि इन दोनों प्रशस्तियों के मध्य ६३ वर्षों की दीर्घ कालावधि (वि० सं० १२१७ से वि० सं० १२८०) का अन्तराल है, तथापि इतने लम्बे काल तक किसी भी व्यक्ति का सामाजिक या धार्मिक क्रियाकलापों में संलग्न रहना नितान्त असंभव नहीं लगता। चूंकि ब्रह्माणगच्छ सर्वसुविधासम्पन्न एक चैत्यवासी गच्छ था और

---

* प्रवक्ता - पार्श्वनाथ विद्यापीठ।

ऐसा प्रतीत होता है कि पं० अभयकुमार की मुनिदीक्षा कम उम्र (अल्पांयु) में हुई होगी और ये दीर्घायु भी हुए, इसी कारण ब्रह्माणगच्छ के रंगमंच पर इनकी लम्बे समय तक पंडित, वाचनाचार्य और गणि के रूप में उपस्थित बनी रही ।

वि० सं० १५२७ में लिखी गयी **नेमिनाथचरित्र** की प्रतिलेखन प्रशस्ति[६] में प्रतिलिपिकार ब्रह्माणगच्छीय हर्षमति ने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है :

शीलगुणसूरि
|
जगत्सूरि
|
हर्षमति (वि० सं० १५२७/ ई० स० १४७१ में **नेमिनाथचरित्र** के प्रतिलिपिकर्ता)

इसी प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि एक श्रावक परिवार द्वारा उक्त प्रति श्री आनन्दविमलसूरि के प्रशिष्य और धनविमलगणि के शिष्य (शिव) विमलगणि को पठनार्थ प्रदान की गयी । आनन्दविमलसूरि किस गच्छ के थे इस बारे में कोई सूचना नहीं मिलती । प्रताप सिंह जी का मंदिर, रामघाट, वाराणसी में संरक्षित नेमिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण वि. सं० १५२० के लेख[७] में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में भी ब्रह्माणगच्छीय किन्हीं शीलगुणसूरि का नाम मिलता है जो समसामयिकता, नामसाम्य, गच्छसाम्य आदि बातों को देखते हुए उक्त प्रशस्ति में उल्लिखित शीलगुणसूरि से अभिन्न माने जा सकते हैं ।

रसरत्नाकर की वि० सं० १५९८ में लिखी गयी प्रति की दाताप्रशस्ति[८] में प्रतिलिपिकार ब्रह्माणगच्छीय वाचक शिवसुन्दर ने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है :

विमलसूरि
|
साधुकीर्ति
|
वा० शिवसुन्दर (वि० सं० १५९८ में रसरत्नाकर के प्रतिलिपिकार)

ब्रह्माणगच्छ में भावकवि[९] नामक एक रचनाकार हो चुके हैं । इनके द्वारा मरु-गुर्जर भाषा में रचित **हरिश्चन्द्ररास** और **अंबडरास** ये दो कृतियाँ मिलती हैं[१०]। इनकी प्रशस्तियों में इन्होंने अपने गुरु, प्रगुरु, गच्छ आदि का तो उल्लेख किया है । किन्तु रचनाकाल के बारे में वे मौन हैं । **अंबडरास** की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने शिष्य लक्ष्मीसागर के आग्रह पर इसकी रचना की थी[११] । **हरिश्चचन्द्ररास** की वि० सं० १६०७ में लिखी गयी एक प्रति मुनि श्रीपुण्यविजय जी के संग्रह में उपलब्ध है[१२], जिसके आधार पर इसका रचनाकाल वि० सं० की १६वीं

शती माना जा सकता है। प्रशस्ति में उल्लिखित गुर्वावली इस प्रकार है -

बुद्धिसागरसूरि
|
विमलसूरि
|
गुणमाणिक्य
|
भावकवि (अबंडरास और हरिश्चन्द्ररास के रचनाकर)

बालावसही, शत्रुंजय में प्रतिष्ठापित धर्मनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण वि० सं० १५७६ के लेख[१३] में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में विमलसूरि का नाम मिलता है जिन्हें समसामयिकता, नामसाम्य आदि के आधार पर उक्त दोनों प्रशस्तियों में उल्लिखित विमलसूरि से अभिन्न मानने में कोई बाधा दिखाई नहीं देती।

उक्त दोनों प्रशस्तियों के आधार पर विमलसूरि की शिष्य परम्परा की एक छोटी तालिका बनायी जा सकती है, जो इस प्रकार है :

तालिका-१

विमलसूरि (वि० सं० १५७६/ ई० स० १५२०)
|
प्रतिमालेख

साधुकीर्ति
|
वा० शिवसुन्दर
(वि० सं० १५९८/ई० स० १५४२ में रसरत्नाकर के प्रतिलिपिकार)

गुणमाणिक्य
|
भावकवि
(अंबडरास और हरिश्चन्द्र रास के कर्ता)
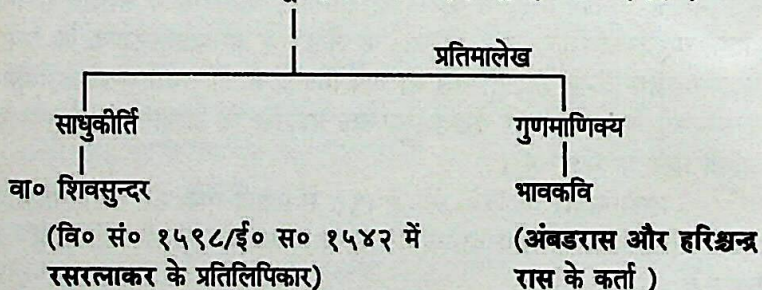
युगादिदेवस्तवनम् की वि० सं० १६१०/ ई० स० १५५४ में लिखी गयी प्रति की प्रशस्ति में प्रतिलिपिकार ब्रह्माणगच्छीय नयकुंजर ने स्वयं को गुणसुन्दरसूरि का शिष्य बतलाया है।

गुणसुन्दरसूरि
|
नयकुंजर (वि० सं० १६१०/ई० स० १५५४ में **युगादिदेवस्तवन प्रतिलिपिकार**)

ब्रह्माणगच्छ से सम्बद्ध १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण का साक्ष्य होने से यह प्रशस्ति इस गच्छ के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है।

जैसा कि लेख के प्रारम्भ में कहा जा चुका है ब्रह्माणगच्छ से सम्बद्ध बड़ी संख्या में अभिलेखीय साक्ष्य मिले हैं जो वि० सं० ११२४ से वि० सं० १५९२ तक के हैं। इनका विवरण इस प्रकार है:

लेखाङ्क	संवत्	तिथि/मिति	आचार्य का नाम	प्रतिमालेख/ स्तम्भ लेख	प्राप्ति स्थान	संदर्भग्रन्थ
१	२	३	४	५	६	७
१	११२४	-	यशोभद्राचार्य, यशोवर्धन, वैरसिंह, जज्जगसूरि, प्रद्युम्नसूरि	प्रतिमा लेख	जैनमंदिर, रांतेज	जैनसत्यप्रकाश, वर्ष २, पृ. ३८३, प्राचीनजैनलेखसंग्रह, मुनि जिनविजय भाग-२, लेखाङ्क ४६४
२	११२४	-	यशोभद्रसूरि	-	वही	मुनिजिनविजय, वही, लेखाङ्क ४६३
३	११२९		-	महावीर स्वामी की धातु प्रतिमा का लेख	वही	जैनसत्यप्रकाश वर्ष ९,पृ. ३८१
४	११३४	फाल्गुन सुदि ७ गुरुवार	प्रद्युम्नसूरि संतानीय	महावीर स्वामी की प्रतिमा का लेख	आबू	मुनि जयन्तविजय, आबू, भाग,२ लेखाङ्क ४६५
५	११४४	माघ सुदि ११	देवाचार्य	-	नवखंडापार्श्वनाथ जिनालय, पाली	
६	११४४	माघ सुदि ११	देवाचार्य	-	वही	पूरनचन्द नाहर, जैनलेखसंग्रह, भाग १, लेखांक ८११,

७	११६८		आम्रदेवसूरि	-	जैनमंदिर, अजारी	प्राचीनजैनलेखसंग्रह, भाग, २ लेखांक ३८२, पाठभेद, द्रष्टव्य आबू, भाग ५, लेखाङ्क ४०३
८	११७०	-	शालिभद्राचार्य		जैनमंदिर, रांतेज	मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ४६८
९	११८५	-	यशोभद्रसूरि		अनन्तनाथ जिनालय, भरुच	मुनि बुद्धिसागर, संपा० जैनधातु-प्रतिमालेखसंग्रह, भाग २, लेखाङ्क २९८
१०	११८५	चैत्र सुदि १३	यशोभद्रसूरि	-	-	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ७०१
११	११८८	फाल्गुन सुदि २ शुक्रवार	श्रीपतट्टुत सूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथजिनालय, लिंबडी पाड़ा, पाटण	बद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क २८६
१२	११९०	आषाढ सुदि ९	यशोभद्रसूरि	जिनप्रतिमा	शत्रुंजय	सम्बोधि, जिल्द ४, पृष्ठ १५, लेखांङ्क ४
१३	११९०	-	-	-	शांतिनाथ जिनालय, वीसनगर	मुनि बुद्धिसागर,पूर्वोक्त, भाग१, लेखाङ्क ५०६
१३(अ)	११९५	फाल्गुन सुदि११	उद्योतनाचार्य-संतानीय	अरिष्टनेमि की प्रतिमा का लेख	घोघा	"घोघानी मध्यकालीन धातुप्रतिमा" लक्ष्मण भोजक, निर्ग्रन्थ, जिल्द १, पृष्ठ ६९
१४	१२१३	फाल्गुन सुदि ६	वीरसूरि	पंचतीर्थी का लेख	शांतिनाथ, जिनालय, कनासानो पाडो, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ३२५

१५	१२१७	वैशाख वदि १	प्रद्युम्नसूरि	प्रतिमा लेख	जैन मंदिर, धराद	दौलतसिंह लोढ़ा, संपा. श्री प्रतिमालेखसंग्रह, लेखाङ्क-२००
१६	१२१९	मिति विहीन	प्रद्युम्नसूरि	-	-	मुनिजिनविजय, पूर्वोक्त, भाग, २ लेखाङ्क १९
१७	१२२१	वैशाख सुदि११	विमलसूरि के संतानीय प्रद्युम्नसूरि		राधनपुर	मुनि विशालविजय, संपा० राधनपुरप्रतिमालेखसंग्रह, लेखाङ्क १५
१८	१२२३	फाल्गुन वदि २ सोमवार	-	-	अजितनाथ जिनालय, सिरोही	विनयसागर, संपा० प्रतिष्ठालेख संग्रह, लेखाङ्क-३२
१९	१२२४	-	प्रद्युम्नसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	अगरचंद नाहटा, संपा०बीकानेर जैनलेखसंग्रह, लेखाङ्क -८७
२०	१२२४	चैत्र वदि ५	-	-	-	अर्बुदाचलप्रदक्षिणाजैनलेखसंदोह (आबू-भाग-५), लेखाङ्क २४४
२१	१२३४	-	महेन्द्रसूरि	-	आदिनाथ जिनालय, मांडवी पोल, खंभात	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ६२०
२२	१२३५	फाल्गुन वदि २	प्रद्युम्नसूरि	-	-	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १९
२३	१२४२	-	-	दीवाल पर उत्कीर्ण लेख	जैन मंदिर, वरमाण	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ३२८
२४	१२५९	-	-	कायोत्सर्ग प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख	जैनमंदिर, मडार	वही, भाग ५, लेखाङ्क ६५

२५	१२६१	ज्येष्ठ सुदि २ रविवार	जयप्रभसूरि	खंडित परिकर का लेख	जैन मंदिर, भारोल	**श्रीभारोलतीर्थ**, लेखक, मुनि विशाल, विजय लेखाङ्क १
२६	१२६३	-	विमलसूरि		पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ९२७
२७	१२७०	-	प्रद्युम्नसूरि के संतानीय	-	वही	वही, भाग २, लेखाङ्क ९३२
२८	१२९०	-	मुनिचन्द्रसूरि	-	-	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ५६२
२९	१२९५	-	देवसूरि के प्रशिष्य माणिक्यसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १३५
३०	१३०२	-	-	-	शांतिनाथ जिनालय अचलगढ़	आबू, भाग २, लेखाङ्क ४९२
३१	१३०५	फाल्गुन सुदि ५	वीरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, सलषणपुर	जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ४८७
३२	१३०९	-	प्रद्युम्नसूरि	-	-	**जैनसत्यप्रकाश**, वर्ष १८, पृ. २३७-३८
३३	१३११	-	जज्जगसूरि	-	अजितनाथ जिनालय करवीरपुर, भरुच	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ३४६
३४	१३१६	वैशाख वदि.....	विमलसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, रांतेज	जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ४६५
३५	१३२०	फाल्गुन सुदि २ शुक्रवार	जज्जगसूरि के पट्टधर वयरसेण	महावीर स्वामी की पंचतीर्थो का लेख	जैनमंदिर, डीसा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २०९८

			उपाध्याय			
३६	१३२६	माघ वदि २ रविवार	बुद्धिसागरसूरि	नेमिनाथ की चौबीसी का लेख	जैनमंदिर, शंखेश्वर,अगल- बगल देवकुलिकाओं में स्थित प्रतिमाओं के लेख	मुनि जयन्तविजय, शंखेश्वर महातीर्थ, लेखाङ्क २-३
३७	१३२६	माघ वदि २ रविवार	बुद्धिसागरसूरि	आदिनाथ की चौबीसी का लेख	वही	जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ५००
३८	१३२७	चैत्र वदि ७ गुरुवार	मदनप्रभसूरि	धातुप्रतिमालेख	जैनमंदिर, मडार	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ६८
३९	१३२८	वैशाल वदि ५ गुरुवार	विमलसूरि के पट्टधर बुद्धिसागरसूरि	धर्मनाथ की चौबीसी का लेख	जैनमंदिर, सेलवाड़ा, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३२२
४०	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	जज्जगसूरि	अरनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, सलषणपुर	मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ४८०
४१	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	जज्जगसूरि	सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	वही	वही, भाग २, लेखाङ्क ४७०
४२	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	वीरसूरि	प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख	वही	वही, भाग २, लेखाङ्क ४७२
४३	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	वयरसेणोपाध्याय	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	भोंयरा स्थित प्राचीन परिकर का लेख, जैनमंदिर, सलषणपुर	वही, भाग२, लेखाङ्क ४७८
४४	१३३०	चैत्र वदि ७	वीरसूरि	महावीर स्वामी की	भोंयरा स्थित प्राचीन	वही, लेखाङ्क ४७९

		शनिवार		प्रतिमा का लेख	परिकर का लेख, जैनमंदिर सलषणपुर	
४५	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	जज्जगसूरि	शांतिनाथ चैत्य में जिनविम्ब प्रतिष्ठा का उल्लेख	वही	वही, लेखाङ्क ४९०
४६	१३३०	चैत्र वदि ७ शनिवार	जज्जगसूरि	सुविधनाथ की प्रतिमा का लेख	मूलनायक पार्श्वनाथ की प्रतिमा के दोनों ओर स्थित प्रतिमाओं के लेख, जैनमंदिर, शंखेश्वर	वही, भाग २, लेखाङ्क ४९७
४७	१३३०	वैशाख सुदि ९ सोमवार	जज्जगसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख	पंचासरा पार्श्वनाथ जिनालय, पाटण	वही, भाग २, लेखाङ्क ५१८
४८	१३३०	वैशाख सुदि ९ सोमवार	जज्जगसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वही	वही, भाग २ लेखाङ्क ५१९
४९	१३३९	-	वयरसेणोपाध्याय के शिष्य	-	नेमिनाथ जिनालय, मेहता चौक, बड़ोदरा	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क १६९
५०	१३३९	पौष वदि ९ सोमवार	बुद्धिसागरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ का पंचायती बड़ामंदिर, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ११३७
५१	१३४०	-	मुनिचन्द्रसूरि	प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख	नया जैन मंदिर में भोयरा स्थित प्राचीन परिकर का लेख, सलषणपुर	जिनविजय, पूर्वोक्त, भाग-२, लेखाङ्क ४८१

५२	१३४१	मिति विहीन	श्रीधरसूरि	-	वीर चैत्यालय के अन्तर्गत स्थित आदिनाथ चैत्यालय का लेख, जैनमंदिर, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १४९
५३	१३४४	ज्येष्ठ वदि ४ शुक्रवार	वीरसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १९९
५४	१३४७	ज्येष्ठ वदि २	-	नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख	भोयरा स्थित प्राचीन परिकर का लेख, जैनमंदिर, सलषणपुर	जिनविजय, पूर्वोक्त-भाग २, लेखाङ्क ४७५
५५	१३४९	चैत्र वदि ६ रविवार	जज्जगसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख	वही	वही, लेखाङ्क ४७३
५६	१३४९	चैत्र वदि ६ रविवार	जज्जगसूरि	अरिष्टनेमि की रत्न प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख	पंचासरा पार्श्वनाथ जिनालय, पाटण	वही, लेखाङ्क५०२
५७	१३५१	माघ वदि १ सोमवार	-	प्रतिमा लेख	जैनमंदिर स्थित कायोत्सर्ग प्रतिमा का लेख, वरमाण	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३२५
५८	१३५१	-	-	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, वरमाण	वही, लेखाङ्क ३२५ तथा आबू, भाग ५, लेखाङ्क ११२
५९	१३५१	पौष वदि ३ बुधवार	-	-	वीर जिनालय, वैदों का चौक, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १२३०
६०	१३५५	तिथि विहीन	विमलसूरि	आदिनाथ की	पार्श्वनाथ जिनालय,	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २,

				प्रतिमा का लेख	करेड़ा, मेवाड़	लेखाङ्क १९२२
६१	१३५७	-	विमलसूरि	धातुप्रतिमा लेख	जैनमंदिर, कातरग्राम	-
६२	१३५९	तिथि विहीन	वीरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १५८
६३	१३६७	-	वीरसूरि	धातुप्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, धनारी	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ५०६
६४	१३७०	चैत्र वदि ५ शुक्रवार	जज्जगसूरि	महावीर स्वामी की पंचतीर्थी का लेख	अजितनाथ जिनालय, सिरोही	विनयसागर, संपा. प्रतिष्ठालेख संग्रह, लेखाङ्क ११२
६५	१३७०	-	भद्रेश्वरसूरि	-	सुमतिनाथमुख्यबावन जिनालय, मातर	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ५१२
६६	१३७०	पौष वदि ५ सोमवार	मुनिचन्द्रसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	आबू, अनुपूर्ति लेख	आबू, भाग २, लेखाङ्क ५४२
६७	१३७१	-	विमलसूरि	-	शांतिनाथ जिनालय, चौकसी पोल, खभांत	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८२९
६८	१३७५	तिथिविहीन	मदनप्रभ के शिष्य विजयसेनसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, घीया मंडी, मथुरा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १४३४
६९	१३८०	ज्येष्ठ सुदि १४ गुरुवार	बुद्धिसागरसूरि	वही	महावीर जिनालय, रिलीफ रोड, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ९९१
७०	१३८०	वैशाख सुदि १० रविवार	विनयसेनसूरि	महावीर की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर, कनासानो पाडो, पाटण	वही, भाग १, लेखाङ्क ३३५

७१	१३८२	-	जज्जगसूरि	-	नवपल्लव पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १०९३
७२	१३८६	-	बुद्धिसागरसूरि	-	अनन्तनाथ जिनालय, भरुच	वही., भाग २, लेखाङ्क २९९
७३	१३८७	वैशाख सुदि २ रविवार	जज्जगसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क१७९
७४	१३८८	वैशाख सुदि १५	बुद्धिसागरसूरि	शांतिनाथ की पंचतीर्थी का लेख	मोतीसा का मंदिर, रतलाम	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १३०
७५	१३८९	तिथिविहीन	गुणाकरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ देरासर, वीरमग्राम	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १४८९
७६	१३८९	वैशाख सुदि ८	वीरसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३३०
७७	१३९३	माघ सुदि १५ शुक्रवार	पद्मदेवसूरि	आदिनाथपंचतीर्थी का लेख	यति उपाश्रय, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १३८
७८	१४०५	मार्गशीर्ष सुदि १	बुद्धिसागरसूरि	धातु की परिकरवाली शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, जीरावला	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ११८
७९	१४०५	वैशाख सुदि ३ सोमवार	-	महावीर की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४०३
८०	१४०५	-	बुद्धिसागरसूरि	धातुप्रतिमा लेख	प्राचीन जिनालय, लिंबडी	प्राचीनलेखसंग्रह, संपा. मुनि विजयधर्मसूरि, लेखाङ्क ७०

८१	१४०६	आषाढ़ सुदि ५ गुरुवार	बुद्धिसागरसूरि		चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४०६
८१(अ)	१४०८	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि	-	वही	वही, लेखाङ्क ४१५
८२	१४१०	माघ वदि २ सोमवार	विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि		-	मुनिविशालविजय, संपा. राधनपुर प्रतिमा लेखसंग्रह, लेखाङ्क ६०
८३	१४११	ज्येष्ठ वदि ९ शनिवार	लब्धिसागरसूरि	-	जैनमंदिर, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २२४
८४	१४१२	आश्विन वदि ४ बुधवार	विजयसेनसूरि के शिष्य रत्नाकरसूरि	-	-	वही, लेखाङ्क ३११
८५	१४१७	ज्येष्ठ सुदि ९	विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४३८
८६	१४२०	वैशाख सुदि १० बुधवार	.........?	शांतिनाथ की पंचतीर्थी की लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	आबू, भाग २, लेखाङ्क ५७६
८७	१४२५	वैशाख सुदि ११	बुद्धिसागरसूरि	धातुपंचतीर्थी का लेख	जैनमंदिर, जेतड़ा (थराद)	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३७२
८८	१४२६	द्वितीय वैशाख सुदि ९ रविवार	विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४७७

८९	१४२६	वैशाख सुदि १० रविवार	बुद्धिसागरसूरि		वही	वही, लेखाङ्क -४७५
९०	१४२९	माघ वदि ६ सोमवार	विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि		वही	वही,लेखाङ्क-४९३
९१	१४२९	तिथिविहीन	सावदेवसूरि, बुद्धिसागरसूरि	शांतिनाथ की पञ्चतीर्थी का लेख	संभवनाथ जिनालय, कड़ी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १; लेखाङ्क ७४३
९२	१४३२	वैशाख सुदि १२ गुरुवार	देवचंद्रसूरि	शांतिनाथ चौबीसी का लेख	आबू, अनुपूर्ति लेख	आबू ,भाग २, लेखाङ्क ५८८
९३	१४३२	द्वितीय वैशाख वदि ११सोमवार	हेमतिलकसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४९८
९४	१४३३	तिथिविहीन	मुनिचन्द्रसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय कनासानो पाडो, पाटण	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ३४१
९५	१४३४	वैशाख वदि २ बुधवार	हेमतिलकसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	आबू, अनुपूर्ति लेख	आबू, भाग २, लेखाङ्क ५९२
९६	१४३४	वैशाख वदि २ बुधवार	मुनिचन्दसूरि	आदिनाथ पंचतीर्थी का लेख	वही	वही, लेखाङ्क ५९३
९७	१४३५	फाल्गुन वदि १२ सोमवार	हेमतिलकसूरि	वासुपूज्य पंचतीर्थी का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५१९
९८	१४३७	-	रत्नाकरसूरि के पट्टधर हेमतिलक सूरि	धातु प्रतिमा लेख	गौड़ीजी भंडार, उदयपुर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८२

९९	१४३७	द्वितीय वैशाख वदि ११ सोमवार	रत्नाकरसूरि के पट्टधर हेमतिलकसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ११२३
१००	१४३९	पौष वदि ९ सोमवार	बुद्धिसागरसूरि	शांतिनाथ पंचतीर्थी का लेख	पंचायती मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १६५, नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ५७२
१०१	१४४१	फाल्गुन सुदि ९ सोमवार	प्रद्युम्नसूरि के शिष्यं शीलगुणसूरि	-	जैनमंदिर, राधनपुर	मुनि विशालविजय सं० 'राधनपुरप्रतिमालेखसंग्रह', लेखाङ्क ७७
१०२	१४४५	-	विमलसूरि	-	अनन्तनाथ जिनालय, भरुच	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ३०४
१०३	१४४६	वैशाख वदि ११ बुधवार	मदनप्रभसूरि के पट्टधर भद्रेश्वरसूरि के पट्टधर विजयसेनसूरि के पट्टधर रत्नाकरसूरि के पट्टधर हेमतिलक सूरि	स्तम्भ लेख	वीर जिनालय, वरमाण	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ११३, नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ९६८
१०४	१४४७	-	-	-	शांतिनाथ जिनालय, छाणी	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २६९
१०५	१४४६	माघ वदि १२	उदयाणंदसूरि	शांतिनाथ की	चिन्तामणि जिनालय,	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६३१

		गुरुवार		प्रतिमा का लेख	बीकानेर	
१०६	१४५०	ज्येष्ठ वदि ११ शनिवार	-	-	जैनमंदिर, राधनपुर	मुनिविशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८३
१०७	१४५४	माघ सुदि ८ शनिवार	हेमतिलकसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ९७३
१०८	१४५४	माघ सुदि ८ शनिवार	हेमतिलकसूरि	महावीर की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५६५
१०८ (अ)	१४५६	आषाढ़ सुदि ५ गुरुवार	बुद्धिसागरसूरि	-	वहीं	वही, लेखाङ्क ५७२
१०९	१४५८	वैशाख वदि २ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि	वासुपूज्य की धातु प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, पाटडी	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त लेखाङ्क ९८
११०	१४५९	-	उदयाणंदसूरि	-	खरतरगच्छीय बड़ा जिनालय, कलकत्ता	मुनिकान्तिसागर, संपा०, जैनधातुप्रतिमालेख, लेखाङ्क६२
१११	१४५९	चैत्र वदि १५ शनिवार	हेमतिलकसूरि के पट्टधर उदयाणंदसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५८७
११२	१४५९	चैत्र वदि १	उदयाणंदसूरि	पद्मप्रभ की धातु प्रतिमा का लेख	धर्मनाथ पंचायती बड़ा मंदिर, बड़ाबाजार, कलकत्ता	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ९५
११३	१४५९	ज्येष्ठ वदि १० शनिवार	उदयाणंदसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय बीकानेर.	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५९०
११४	१४६२	वैशाख सुदि ५	उदयाणंदसूरि	-	वही	वही, लेखाङ्क ६०५

		शुक्रवार				
११५	१४६५	-	देवेन्द्रसूरि	-	नवखंडापार्श्वनाथ, जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८६७
११६	१४६६	माघ वदि १२ गुरुवार	उदयाणंदसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६३१
११७	१४६६	-	वीरसूरि	-	संभवनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ११३५
११८	१४६६	वैशाख सुदि ३ सोमवार	वीरसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, लस्कर, ग्वालियर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १३९४
११९	१४७१	माघ सुदि १३ बुधवार	उदयाणंदसूरि	पार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	विमलवसही, आबू	आबू, भाग २, लेखाङ्क १७
१२०	१४७१	माघ सुदि १० रविवार	मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर वीरचन्द्रसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	पद्मावती देरासर, बीजापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ४१८
१२१	१४७१	माघ सुदि १३ बुधवार	उदयाणंदसूरि	पार्श्वनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, विमलवसही, आबू	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २०१६
१२२	१४७६	चैत्र वदि १ शनिवार	वीरसूरि	-	-	मुनि विशालविजय पूर्वोक्त, लेखाङ्क ११
१२३	१४८१		उदयप्रभसूरि	-	ग्राम का जिनालय, चांदवाड़, नासिक	मुनि कान्तिसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७५
१२४	१४८३	ज्येष्ठ वदि ८ रविवार	वीरसूरि के पट्टधर मुनिचंद्रसूरि	नेमिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २३

१२५	१४८३	ज्येष्ठ सुदि ९ मंगलवार	वीरसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, डीसा	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २१०१
१२६	१४८४	वैशाख सुदि २ शुक्रवार	प्रद्युम्नसूरि	-	-	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ११०
१२७	१४८७	पौष वदि ६ शुक्रवार	वीरसूरि	-	-	श्रीशंखेश्वरमहातीर्थ, संपा., मुनिविशालविजय, लेखाङ्क १५
१२८	१४८६	-	वीरसूरि	धातुप्रतिमा लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, मांडल	मुनिजिनविजय, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ३१६
१२९	१४८९	वैशाख सुदि ३	पजून (प्रद्युम्न) सूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखाङ्क २३०४
१३०	१४८९	वैशाख सुदि ३ बुधवार	क्षमासूरि (२)	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १८८
१३१	१४९०	वैशाख सुदि ३ सोमवार	वीरसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ७४८
१३२	१४९१	माघ सुदि ५ बुधवार	उदयप्रभसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, पामेरा	आबू, भाग ५, लेखाङ्क ८२८
१३३	१४९२	-	वीरसूरि	-	सुमतिनाथमुख्यबावन जिनालय, मातर	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग२, लेखाङ्क ५०८
१३४	१४९३	वैशाख सुदि ५ बुधवार	बुद्धिसागरसूरि के शिष्य श्रीसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	कल्याण पार्श्वनाथ देरासर, वीसनगर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ५३८
१३५	१४९३	वैशाख सुदि ५ बुधवार	जज्जगसूरि के पट्टधर पजूनसूरि	-	जैनमंदिर, झवेरीवाड़, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, वही, भाग १, लेखाङ्क ८२८

१३६	१४९३	वैशाख वदि ११ मंगलवार	मुनिचन्द्रसूरि	वासुपूज्य स्वामी की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ देरासर, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १६१
१३७	१४९५	आषाढ़ सुदि ९ रविवार	जज्जगसूरि के शिष्य प्रद्युम्नसूरि	धर्मनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १४
१३७ (अ)	१४९७	ज्येष्ठ सुदि ८ सोमवार	मुनिचन्द्रसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	धनवसही, बाबूमंदिर तलहटी, पालिताना	कांतिसागर, संपा०, शत्रुंजयवैभव, लेखाङ्क ८०
१३८	१४९८	-	मुनिचन्द्रसूरि	-	आदिनाथ जिनालय, नदियाड़	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ३९०
१३९	१५००	वैशाख सुदि ३	विमलसूरि	शीतलनाथ पंचतीर्थी का लेख	जैन मंदिर, सराफाबाजार लस्कर, ग्वालियर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १३६८
१४०	१५०१	वैशाख सुदि ७ बुधवार	प्रद्युम्नसूरि	मुनिसुव्रत स्वामी की धातु प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, पूना	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १८८
१४१	१५०१	आषाढ़ सुदि २ सोमवार	उदयप्रभसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८४८
१४२	१५०१	माघ सुदि ५ बुधवार	मुनिचन्द्रसूरि	धातुप्रतिमा लेख	शांतिनाथ जिनालय, मांडल	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १७८
१४३	१५०१	माघ सुदि ५ बुधवार	उदयप्रभसूरि	चन्द्रप्रभस्वामी की धातुप्रतिमा का लेख	चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८५३
१४४	१५०१	फाल्गुन सुदि ५	पजून (प्रद्युम्न)सूरि	वासुपूज्य की	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ९१

		गुरुवार		प्रतिमा का लेख		
१४४अ	१५०१	-	हेमतिलकसूरि वीरचन्द्र- जयाणंद- मुनितिलकसूरि	पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, सादड़ी, के	अरविन्द कु. सिंह- "चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर तीन जैन प्रतिभा लेख " Aspects of Jainology. Vol. III Vol II, P-172-173
१४५	१५०३	ज्येष्ठ वदि ७	पजून (प्रद्युम्न) सूरि	वासुपूज्य की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, लेखाङ्क १६०
१४६	१५०४	-	मणिचन्द्र (मुनिचन्द्र) सूरि	-	-	जैनसत्यप्रकाश, वर्ष ६, पृ. ३७२-७४
१४७	१५०५	वैशाख सुदि ३ शुक्रवार	वीरसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ८७
१४८	१५०५	पौष वदि ७ गुरुवार	विमलसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेखं	आदिनाथ जिनालय, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २०९
१४९	१५०५	वैशाख सुदि ५	मुनिचन्द्रसूरि	विमलनाथ की चौबीसी का लेख	अजितनाथ देरासर, शेख नो पाडो, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १०६३
१५०	१५०६	फाल्गुन सुदि ९ शुक्रवार	उदयप्रभसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क९०६
१५१	१५०६	फाल्गुन सुदि ९ शुक्रवार	उदयप्रभसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	वही, लेखाङ्क ९०८
१५२	१५०६	-	उदयप्रभसूरि	-	शांतिनाथ जिनालय,	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २,

					खंभात	लेखाङ्क ८३७
१५३	१५०६	-	बुद्धिसागरसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, खंभात	वही, भाग २, लेखाङ्क ८०८
१५४	१५०६	माघ सुदि ५ रविवार	वीरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	वीर जिनालय, थराद	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २४३
१५५	१५०७	फाल्गुन वदि ११ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	-	वही, लेखाङ्क १४८
१५६	१५०८	-	विमलसूरि	-	शांतिनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ९८६
१५७	१५०९	-	पजून (प्रद्युम्न) सूरि	-	चन्द्रप्रभ जिनालय, बड़ोदरा	वही, भाग २, लेखाङ्क १९८
१५७अ	१५१०	ज्येष्ठ सुदि १०	बुद्धिसागरसूरि विमलसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुंजय, पालिताना	शत्रुंजयवैभव, लेखांक १२८
१५८	१५१०	फाल्गुन सुदि ११ शनिवार	,,	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	अष्टापदजीका मंदिर, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २१६८
१५९	१५१०	फाल्गुन सुदि ११ शनिवार	,,	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २७७१
१६०	१५१०	माघ सुदि ५ शुक्रवार	,,	,,	महावीर स्वामी का मंदिर बीकानेर	वही, लेखाङ्क १३५६
१६१	१५११	-	पजूनसूरि	-	शीतलनाथ जिनालय, बड़ोदरा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २०७
१६२	१५११	-	उदयप्रभसूरि	-	शांतिनाथ जिनालय,	वही, भाग २, लेखाङ्क ५५

					बड़ोदरा	
१६३	१५११	-	मुनिचन्द्रसूरि	-	पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	वही, भाग २, लेखाङ्क ९७७
१६४	१५११	पौष वदि ५ बुधवार	विमलसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, मणिकतल्ला, कलकत्ता	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ११७
१६५	१५११	पौष वदि ५ बुधवार	,,	-	जैनमंदिर, राधनपुर	मुनिविशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १६९
१६६	१५११	पौष वदि १३ शुक्रवार	मुनिचन्द्रसूरि	सुविधिनाथ की प्रतिमा का लेख	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, विजापुर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग१, लेखाङ्क ४२६
१६७	१५११	माघ सुदि ५ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि	आदिनाथ पंचतीर्थी का लेख	श्रीमालों का मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४८०
१६८	१५११	माघ वदि २ सोमवार	उदयप्रभसूरि		चिन्तामणि जिनालय, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ९५१
१६९	१५११	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि	शीतलनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, मांडल	विजयधर्मसूरि पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क २६८
१७०	१५१२	-	मुनिचन्द्रसूरि	-	चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ११२५
१७१	१५१३	-	विमलसूरि	पार्श्वनाथ की देहरी का लेख	जैनमंदिर, बड़ोदरा	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८४
१७२	१५१३	फाल्गुन वदि १२ सोमवार	उदयप्रभसूरि	आदिनाथ पंचतीर्थी का लेख	पद्मप्रभ जिनालय, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५२५
१७३	१५१३	माघ सुदि ५	मुनिचन्द्रसूरि	आदिनाथ की	-	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १३३

		शुक्रवार		प्रतिमा का लेख		
१७४	१५१३	पौष सुदि ७	उदयप्रभसूरि (ब्रह्माणगच्छीय) एवं पूर्णचन्द्रसूरि के पट्टधर तपागच्छीय हेमहंससूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, उदयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १०८९
१७५	१५१५	आषाढ़ सुदि ५ बुधवार	उदयप्रभसूरि	श्रेयांसनाथ पंचतीर्थी का लेख	जैन मंदिर, जूनीया	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५४४
१७६	१५१५	कार्तिक वदि ५ गुरुवार	विमलसूरि	संभवनाथ की प्रतिमाका लेख	आदिनाथ जिनालय, वडनगर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ५५७
१७७	१५१५	माघ सुदि १ शुक्रवार	विमलसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	नवखंडापार्श्वनाथ देरासर, घोघा	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३००
१७८	१५१५	माघ सुदि १ शुक्रवार	विमलसूरि	नेमिनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, जूनागढ़	वही, लेखाङ्क २९८
१७९	१५१६	-	श्रीसूरि.(?)	-	सुमतिनाथमुख्यबावन जिनालय, मातर	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ४८०
१८०	१५१६	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर वीरसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	पद्मप्रभ जिनालय, चूड़ी वाली गली, लखनऊ	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १५५१
१८१	१५१६	वैशाख वदि ११ शुक्रवार	बुद्धिसागरसूरि के पट्टधर विमलसूरि	जीवंतस्वामी शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथदेरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १०८१

१८३	१५१७	माघ सुदि १० बुधवार	प्रद्युम्नसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	-	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ४४
१८४	१५१७	चैत्र सुदि १० गुरुवार	उदयप्रभसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, जूनीमंडी, जोधपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ५८८
१८५	१५१८	वैशाख सुदि ३ शनिवार	उदयप्रभसूरि	मुनिसुव्रत की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिनालय, कोचरों का मुहल्ला, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १५५८
१८६	१५१८	माघ सुदि ४ बुधवार	विमलसूरि	धर्मनाथ पंचतीर्थी का लेख	नेमिनाथ जिनालय, अजीमगंज, मुर्शिदाबाद	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १०११
१८७	१५१८	माघ सुदि ६ बुधवार	वीरसूरि	कुन्थुनाथ की धातु प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, जामनगर	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ३१८
१८८	१५१९	कार्तिक वदि ४ गुरुवार	वीरसूरि	अजितनाथ की चौबीसी का लेख		नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १०४
१८९	१५१९	-	विमलसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, नागौर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क १२६९
१९०	१५१९	ज्येष्ठ सुदि ९ शुक्रवार	विमलसूरि	धर्मनाथ पंचतीर्थी का लेख	बड़ा मंदिर, अजबगढ़	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ५९५
१९१	१५१९	ज्येष्ठ सुदि ९ शुक्रवार	उदयप्रभसूरि	सुमतिनाथ की पंचतीर्थी का लेख	अनुपूर्ति लेख, आबू	आबू, भाग २, लेखाङ्क ६४३
१९२	१५१९	ज्येष्ठ सुदि ९ शुक्रवार	विमलसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	चन्द्रप्रभ जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखाङ्क २३४५

१९३	१५१९	ज्येष्ठ सुदि ९ शुक्रवार	विमलसूरि	मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा कालेख	पोरवाडों का मंदिर, पूना	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क३३८
१९४	१५१९	ज्येष्ठ सुदि ९ शुक्रवार	विमलसूरि	नेमिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, जामनगर	वही, लेखाङ्क ३३९
१९५	१५१९	माघ सुदि ५ सोमवार	विमलसूरि	धर्मनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	बड़ामंदिर, नागौर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६०१
१९६	१५१९	फाल्गुन वदि ४ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर वीरसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	जैनमंदिर, प्रेमचंद मोदी की टोंक, शत्रुंजय	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ६९३
१९७	१५२०	-	श्रीसूरि	-	चिन्तामणि जिनालय, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ८१६
१९८	१५२०	पौष सुदि १३ शुक्रवार	शीलगुणसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	कुशलाजीकामंदिर, रामघाट, वाराणसी	नाहर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ४२२
२००	१५२१	चैत्र वदि ९ शुक्रवार	विमलसूरि	अभिनंदनस्वामी की प्रतिमा का लेख	अजितनाथ देरासर, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १०८७
२०१	१५२२	मार्गशीर्ष सुदि ५ गुरुवार	वीरसूरि	पद्मप्रभ की प्रतिमा का लेख	नवखंडा पार्श्वनाथ देरासर, घोघा	विजयधर्मसूरि, पूर्वोक्त, लेखाङ्क३६०
२०२	१५२२	ज्येष्ठ वदि ७ गुरुवार	वीरसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिनालय, अहमदाबाद	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ११२०
२०३	१५२३	-	वीरसूरि	-	शांतिनाथ जिनालय, भोंयरापाडो, खंभात	वही, भाग २, लेखाङ्क ९०१
२०४	१५२३	-	विमलसूरि	-	भीड़भंजन पार्श्वनाथ जिनालय, खेड़ा	वही, भाग २, लेखाङ्क ४४४

२०५	१५२४	-	विमलसूरि	-	सुमतिनाथ जिनालय, खंभात	वही, भाग २,. लेखाङ्क ६८९
२०६	१५२४	चैत्र सुदि ५ शनिवार	वीरसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	मुनिसुव्रत जिनालय, मालपुरा	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६३७
२०७	१५२४	वैशाख सुदि २ शनिवार	विमलसूरि	नमिनाथ की प्रतिमा का लेख	जैन मंदिर, भारज, सिरोही	नाहर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क २०८८ आबू, भाग ५, लेखाङ्क ६१९ बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क ९५६
२०८	१५२५	ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार	वीरसूरि	अजितनाथ की प्रतिमा का लेख	-	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क
२०९	१५२५	ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार	वीरसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमा का लेख	-	वही, लेखाङ्क ८७
२१०	१५२५	फाल्गुन सुदि ७ शनिवार	वीरसूरि	शांतिनाथ की चौबीसी का लेख	-	वही, लेखाङ्क २५
२११	१५२७	तिथिविहीन	उदयप्रभसूरि	सुमतिनाथ पंचतीर्थी का लेख	पंचायती मंदिर, जयपुर	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६९९
२१२	१५२८	-	वीरसूरि	कुन्थुनाथ की प्रतिमा का लेख	पार्श्वनाथ जिनालय, माणेक चौक, खंभात	बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग २, लेखाङ्क ९२५
२१३	१५२८	-	बुद्धिसागरसूरि	विमलनाथ की प्रतिमाका लेख	शांतिनाथ जिनालय, खंभात	वही, भाग २, लेखाङ्क ९००
२१४	१५२८	वैशाख वदि ५ गुरुवार	बुद्धिसागरसूरि	धर्मनाथ की चौबीसी का लेख	-	आबू, भाग ५, लेखाङ्क १८८

२१५	१५२८	वैशाख सुदि ४ बुधवार	उदयप्रभसूरि	वासुपूज्य स्वामी की प्रतिमा कालेख	चिन्तामणिजी का मंदिर, बीकानेर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १०५७
२१६	१५२८	मार्गशीर्ष सुदि २	बुद्धिसागरसूरि	सुमतिनाथ की प्रतिमा का लेख	आदिनाथ जिनालय, डग	विनयसागर, पूर्वोक्त, लेखाङ्क ६०७
२१७	१५२८	मार्गशीर्ष सुदि २	बुद्धिसागरसूरि	कुन्थुनाथ की पंचतीर्थी का लेख	"	वही, लेखाङ्क ७०८
२१८	१५२८	माघ सुदि १ बुधवार	बुद्धिसागरसूरि	संभवनाथ की प्रतिमा का लेख	-	लोढ़ा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क १७१
२१९	१५३०	फाल्गुन वदि २	उदयप्रभसूरि	श्रेयांसनाथ की प्रतिमा का लेख	गौडीपार्श्वनाथ जिना०, पालिताना	मुनि कान्तिसागर, संपा० शत्रुंजयवैभव, लेखाङ्क २०६
२२०	१५३०	फाल्गुन वदि १३ सोमवार	उदयप्रभसूरि के पट्टधर राजसुन्दर सूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	शीतलनाथ जिनालय, रिणी, तारानगर	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २४४१
२२१	१५३१	वैशाख सुदि ३ शनिवार	वीरसूरि	-	-	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखाङ्क२७५
२२२	१५३२	-	बुद्धिसागरसूरि	-	अजितनाथ जिनालय, अहमदाबाद	बुद्धिसागरसूरि, पूर्वोक्त, भाग १, लेखाङ्क १०५२
२२३	१५३६	-	बुद्धिसागरसूरि	-	पार्श्वनाथ जिनालय, खंभात	वही, भाग २, लेखाङ्क ९४६
२२४	१५३६	-	वीरसूरि	-	वही	वही, भाग २, लेखाङ्क ९२३
२२५	१५३६	मार्गशीर्ष सुदि ९ शुक्रवार	वीरसूरि	आदिनाथ की प्रतिमा का लेख	गांव का जिनालय, चांदवड़, नासिक (महा.)	मुनि कान्तिसागर, संपा. जैनधातु प्रतिमालेख, लेखाङ्क २३५

२२६	१५४०	वैशाख सुदि १० बुधवार	बुद्धिसागरसूरि		सूरतगढ़	नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क २५२२
२२७	१५५९	वैशाख सुदि १३ सोमवार	विमलसूरि के पट्टधर बुद्धिसागर सूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का आलेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग२, लेखाङ्क ११८८
२२८	१५६३	वैशाख सुदि१२ गुरुवार	जाजीग (जज्जग) सूरि	आदिनाथ की प्रमिका लेख	आदिनाथ जिनालय, डीसा	वही, भाग ३, लेखाङ्क २०९७
२२९	१५७३	वैशाख सुदि१३ गुरुवार	विमलसूरि के पट्टधर बुद्धिसागरसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	सुमतिनाथ जिनालय, जयपुर	वही, भाग ३, लेखाङ्क २३६३
२३०	१५७६	वैशाख सुदि५ गुरुवार	विमलसूरि	धर्मनाथ की प्रतिमा का लेख	बालावसही, शत्रुंजय	शत्रुंतयवैभव, लेखाङ्क २७३
२३१	१५७७	वैशाख सुदि११ गुरुवार	विमलसूरि	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	ऋषभदेव जिनालय, जैसलमेर	नाहर, पूर्वोक्त, भाग ३, लेखाङ्क २४३०
२३२	१५७९	फागुन सुदि८ गुरुवार	मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर वीरसूरि	कुंथुनाथ की चौबीसी प्रतिमाका लेख	वीर जिनालय, गोपटी, खंभाल	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग२, लेखाङ्क ७०४
२३३	१५८९	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	बुद्धिसागरसूरि के पट्टधर विमलसूरि	कुंथुनाथ की प्रतिमाका लेख	सीमंधर स्वामी का मंदिर, खारवाडो, खंभाल	वही, भाग२, लेखाङ्क १०६१
२३४	१५९२	वैशाख सुदि६ गुरुवार	श्रीसूरि	सुपार्श्वनाथ की प्रतिमा का लेख	झवेरीफत्ते भाई अमीचंद का घर देरासर, बडोदरा	वही, भाग२, लेखाङ्क २४१

उक्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर इस गच्छ के मुनिजनों के गुरु-परम्परा की छोटी-छोटी कुछ तालिकायें निर्मित की जा सकती हैं, उक्त अभिलेखीय .... प्रकार हैं :

तालिका- २

तालिका- ३ ?

मदनप्रभसूरि	(वि० सं० १३२७)
भद्रेश्वरसूरि	(वि० सं० १३७०)
विजयसेनसूरि	(वि० सं० १३७५-१३८०)
रत्नाकरसूरि	(वि० सं० १४१२-१४२९)
हेमतिलकसूरि	(वि० सं० १४३२-१४५४)
उदयाणंदसूरि	(वि० सं० १४४६-१४७१)

तालिका ४ ?

विमलसूरि	(वि०सं० १३१६)
बुद्धिसागरसूरि	(वि०सं० १३२६-१३३९)
विमलसूरि	(वि०सं० १३५५)
बुद्धिसागरसूरि	(वि०सं० १३८०)
(विमलसूरि)	
बुद्धिसागरसूरि	(वि०सं० १४०५-१४३९)
(विमलसूरि)	
(बुद्धिसागरसूरि)	
विमलसूरि	(वि०सं० १५००-१५२४)
बुद्धिसागरसूरि	(वि०सं० १५२८-१५५९)
विमलसूरि	(वि०सं० १५७६-१५८९)

तालिका-५

जज्जगसूरि
प्रद्युम्नसूरि (वि० सं० १२१७-१२३५)
जज्जगसूरि (वि०सं० १२३४) प्रद्युम्नसूरिसंतानीय
(प्रद्युम्नसूरि)
(जज्जगसूरि)
(प्रद्युम्नसूरि)
जज्जगसूरि (वि०सं० १३३०-१३४९)
(प्रद्युम्नसूरि)
जज्जगसूरि (वि० सं० १३८७)
(प्रद्युम्नसूरि)
(जज्जगसूरि)
प्रद्युम्नसूरि (वि० सं० १४८९-१५१७)
(जज्जगसूरि)
(प्रद्युम्नसूरि)
जज्जगसूरि (वि० सं० १६६३)

चिन्तामणिपार्श्वनाथ जिनालय, सादड़ी (राजस्थान) में प्रतिष्ठापित पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण वि० सं० १५०१/ई० स० १४४४ के लेख में हेमतिलकसूरि, वीरचन्द्रसूरि, जयाणंदसूरि तथा प्रतिष्ठाकर्ता मुनि तिलकसूरि के नाम अंकित हैं।

डॉ० अरविन्दकुमार सिंह ने इस लेख की वाचना दी है[१५], जो इस प्रकार है:

१. संवत् १५०१ वर्षे श्रीपार्श्वनाथ: (प्रतिमा) स्थापित:
२. ने (?) ने (न) डूलाई प्रासा [द] ++ न पंरिन ++ श्रावके
३. छे श्री हेमतिलक सूरित: । तत् पट्टे श्री वीरचन्द्र सू (रि) ++देम त.
४. [श्री] जयाणंद सूरि प्रतिष्ठित गछनायक

५. (श्री) मुनि तिलक सूरि श्रा० ....

६. ....

वीर जिनालय, वरमाण से प्राप्त एक स्तम्भ लेख[१६] जो वि०सं० १४४६/ ई० स० १३९० का है, में ब्रह्माणगच्छीय कुछ मुनिजनों की गुर्वावली दी गयी है, जो इस प्रकार है :

मदनप्रभसूरि
|
भद्रेश्वरसूरि
|
विजयसेनसूरि
|
रत्नाकरसूरि
|
हेमतिलकसूरि

सादंड़ी से प्राप्त उक्त लेख में भी हेमतिलकसूरि का नाम मिलता है । जैसा कि पूर्व में हम देख चुके हैं वि. सं० १४३२ से १४५४ तक के विभिन्न लेखों में हेमतिलकसूरि का प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में नाम मिलता है । ऐसा संभव है कि वि०सं० १५०१/ई० स० १४४५ के लेख में उल्लिखित हेमतिलकसूरि और ब्रह्माणगच्छीय हेमतिलकसूरि एक ही व्यक्ति हों । ऐसा मान लेने पर ब्रह्माणगच्छ के तीन पश्चात्कालीन मुनिजनों के नाम उक्त अभिलेख ज्ञात हो जाते हैं जिन्हें तालिका के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है:

तालिका- ६

|
|

मदनप्रभसूरि (वि०सं० १३२७) प्रतिमालेख
|
भद्रेश्वरसूरि (वि०सं० १३७०) ,, ,, ,, ,,
|
विजयसेनसूरि (वि० सं० १३७५-१३८०) ,, ,, ,,
|
रत्नाकरसूरि (वि० सं० १४१२-१४२९) ,, ,, ,, ,,
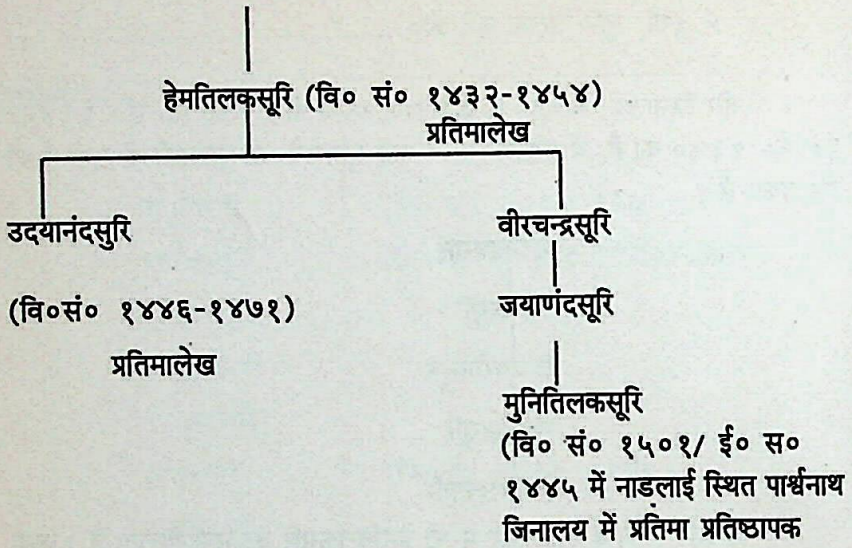
ब्रह्माणगच्छीय अभिलेखीय साक्ष्यों में उल्लिखित इस गच्छ के अनेक मुनिजनों में कुछ को छोड़कर अन्य मुनियों के पूर्वापर सम्बन्धों एवं उपलब्धियों के बारे में किन्ही भी साक्ष्यों से किसी भी प्रकार की कोई जानकारी नहीं मिलती । इन मुनिजनों की नामावली एवं तिथि इस प्रकार है :

यशोभद्रसूरि	(वि० सं० ११२४/ई० स० १०६८)
देवाचार्य	(वि० सं० ११४४/ई० स० १०८८)
आम्रदेवसूरि	(वि० सं० ११६८/ई० स० १११२)
शालिभद्रसूरि	(वि० सं० ११७०/ई० स० १११४)
महेन्द्रसूरि	(वि० सं० १२३४/ई० स० ११७८)
जयप्रभसूरि	(वि० सं० १२६१/ई० स० १२०५)
देवसूरि के प्रशिष्य	
माणिक्यसूरि	(वि० सं० १२९५/ई० स० १२३९)
जज्जगसूरि के शिष्य	
वयरसेण उपाध्याय	(वि० सं० १३२०-१३३०/ई०स० १२६४-१२७४)
श्रीधरसूरि	(वि० सं० १३४१/ई० स० १२८५)
भद्रेश्वरसूरि	(वि० सं० १३७०/ई० स० १३१४)
गुणाकरसूरि	(वि० सं० १३८९/ई०स० १३२३)

पद्मदेवसूरि	(वि० सं० १३९३/ई० स० १३३७)
सावदेवसूरि के पट्टधर	
बुद्धिसागरसूरि	(वि० सं० १४२९/ई० स० १३६३)
लब्धिसागरसूरि	(वि० सं० १४११/ई० स० १३५६)
देवचन्द्रसूरि	(वि० सं० १४३२/ई० स० १३६६)
प्रद्युम्नसूरि के शिष्य	
शीलगुणसूरि	(वि० सं० १४४१/ई० स० १३८५)
देवेन्द्रसूरि	(वि० सं० १४६५/ई० स० १४०९)
उदयप्रभसूरि	(वि० सं०१४८१-१५२८/ई०स० १४२५-१४७२)
क्षमासूरि	(वि० सं० १४८९/ई० स० १४३३)
शीलगुणसूरि	(वि० सं० १५२०/ई० स० १४६४)
उदयप्रभसूरि के पट्टधर	
राजसुन्दरसूरि	(वि० सं० १५३०/ई० स० १५७४)

विक्रम संवत् की १८वीं शती के छठे दशक के पश्चात् इस गच्छ से सम्बद्ध अद्यावधि कोई भी साक्ष्य प्राप्त न होने से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस समय के पश्चात् यह गच्छ नामशेष हो गया होगा। संभवतः इसकी मुनिपरम्परा समाप्त हो गयी और इसके अनुयायी श्रावक-श्राविकायें किन्हीं अन्य गच्छों में सम्मिलित हो गये होंगे। यह गच्छ कब और किस कारण अस्तित्व में आया ? इसके आदिम आचार्य या प्रवर्तक कौन थे ? प्रमाणों के अभाव में ये सभी प्रश्न आज भी अनिर्णित ही रह जाते हैं।

सन्दर्भ

१. मुनि जयन्तविजय, **अर्बुदाचलप्रदक्षिणा**, (आबू-भाग ४), भावनगर वि०सं० २००४, पृष्ठ ८१-८७.

२. (१) संवत् ११९२ ज्येष्ठ सुदि ------------------------------------

(२) (ति) अवंतीनाथ श्रीजयसिंहदेव कल्याण विजयराज्ये एवं काले प्रवर्तमाने। इहैव पा --------------------------ग्रामे----------------------

(३) लिषिते साधु साध्वी श्रावक श्राविकाचरणाकृते। श्रीब्रह्माणीयगच्छे श्रीविमलाचार्य शिष्य श्रावक आ टि श ----------------------------------

(४) तिहंई साढदेव आंबप्रसाद आंबवीर श्रावक ----------------यक नवपदलघुवृत्ति-पूजाष्टकपुस्तिका श्राविका वाल्हवि

जसदेवि दूल्हेवि श्रीयादेवि सरली वालमत --------------------------
समस्त श्राविका नाणपंचमी तपकृत निर्जरार्थं च लिखापिता अर्पिता च अत्रस्थित साध्वी मीनागणि नंदागणि तस्य सिसिणी लषमी देमत --------------मुनि जिनविजय, संपा० **जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह,** सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १८, मुम्बई १९४३ ई० स०, पृष्ठ, १०३

३. Muni PunyaVijaya, Ed. *New Catalogue of Prakrit & Sanskrit Mss. Jesalmer Collection,* L.D. Series No. 36, Ahmedabad 1972 A.D., P. 99-101.

४. *Ibid,* P- 85-87.

५. **पण्डिताभयकुमारगणये** पुस्तकं ददे । वाचनार्थं जयत्येदं स्वमात्रोः पुण्यवृद्धये ॥२४॥
Ibid, P-87.

६. श्री अमृतलाल मगनलाल शाह, संपा०, **श्रीप्रशस्तिसंग्रह,** श्री जैन साहित्य प्रदर्शन, श्री देशविरति धर्माराजक समाज, अहमदाबाद वि० सं० १९९३, भाग २, पृष्ठ ३१.

७. पूरनचंद नाहर, **जैनलेखसंग्रह** भाग१, लेखांक ४२२.

८. इति श्रीपार्वतीपुत्रनित्यनाथसिद्धविरचिते **रसरत्नाकरे** मन्वखण्डे मोहनाद्युच्चाटनं नाम नवमोपदेशः ।
संवत् १५९८ वर्षे आसो वदि १० गुरु । श्रीब्रह्माणगच्छे पूज्यभट्टारक ६ विमलसूरि वा० श्रीसाधुकीर्ति- तत्‌शिष्येण वा० शिवसुन्दरलक्षि (लिखि) तं परोपकाराय मंगल्य (ल) श्रेयसे भवतु ॥ वढीआरमद्धे (ध्ये) बोलिराग्रामे चातुर्मासिके स्थिता लक्षि (लिखि) तम्
A.P. Shah. Ed. *Catalogue of Sanskrit & Prakrit Mss.* Muni Shree PunyaVijayaji,s Collection, Part II, L.D. Series No-5, Ahmedabad 1965 A.D., P-270, No. 4627.

९-१०. मोहनलाल दलीचंददेसाई, **जैनगूर्जरकविओ,** भाग१, द्वितीय संशोधित संस्करण, संपादक, डा० जयन्त कोठारी, मुम्बई १९८६ ई० स०, पृष्ठ ३७६-३७७,

११. उवझाय **भावक कहि,** रखे कोइनि हिणंति ।
शिष्य ज **लख्यमीसागरह,** कारण करिउ प्रबंध ॥

वही, भाग १, पृष्ठ ३७९.

१२. Vidhatri Vora, Ed. *Catalogue of Gujarati Manuscripts* : Muni Shree PunyaVijayaji,s Collection, L.D. series No-71 Ahmedabad 1978 A.D, P.641.

१३. मुनि कांतिसागर, संपा० **शत्रुंजयवैभव**, कुशल संस्थान, पुष्प१, जयपुर १९९० ई०, लेखांक २७३.

१४. संवत् १६१० वर्षे श्री बृहद्ब्रह्माणीयागच्छे भट्टारक श्री ५ श्री गुणसुन्दरसूरि शिष्य गणि नयकुंजर लषतं श्रीमोहणग्रामे फागुण वदि ५ शुक्रवासरे ॥

युगादिदेवस्तवनम् की प्रतिलेखनप्रशस्ति

श्री अमृतलाल मगनलाल शाह, पूर्वोक्त, भाग २, पृष्ठ १०९.

१५. अरविन्द कुमार सिंह, "चिन्तामणि पार्श्वनाथ मंदिर का तीन जैन प्रतिमा लेख" **Aspects of Jainology,** Vol III, Ed. M. A. Dhaky and S.M. Jain, Varanasi 1991 A.D., P.P. 172-173.

१६. संवत् १४४६ वर्षे वैशाख वदि ११ बुधे ब्रह्माणगच्छीय भट्टारक श्रीमदनप्रभसूरि पट्टे श्रीविजयसेनसूरि पट्टे श्रीरत्नाकरसूरिपट्टेश्रीहेमतिलक सूरिभिः पूर्वं गुरु श्रेयार्थ रंगमंडपः कारापितः ॥, पूरनचन्द्र नाहर, **जैनलेखसंग्रह,** भाग २, लेखांक ९६८ ।

पंचेन्द्रिय संवाद : एक आध्यात्मिक रूपक काव्य

संपादक -श्रीमती डॉ० मुन्नी जैन

पुरानी हिन्दी में रचित 'पंचेन्द्रिय संवाद' नामक प्रस्तुत लघुकाव्य कृति के रचनाकार कविवर भैया भगवतीदास जी हैं। इन्होंने इसकी रचना आगरा नगर में भाद्र शुक्ला द्वितीया वि० सं. १७९१ में की थी। जैसा कि रचनाकार ने इसकी प्रशस्ति में कहा भी है -

जिनवानी जो भगवती, तास-दास जो कोई।
सो पावे सुख स्वासतो, परम-धरम पद होई ॥१४९॥
सत्रह सै इक्यानवे, नगर आगरे मांहि।
भादौ सुदि शुभ दोज कौ, बाल ख्याल प्रगटांहि ॥१५०॥

जैनधर्म, दर्शन-अध्यात्म आदि लगभग ६७ विषयों पर प्राचीन विभिन्न एवं दुर्लभ राग-रागिनियों में निबद्ध पदों का संकलन रूप "ब्रह्मविलास" नामक बृहद् काव्य कृति के रचनाकार कविवर भैया भगवतीदास (वि०सं० की १८ वीं शती) मूलत: आगरा निवासी कटारिया गोत्रीय ओसवाल जैन थे। इनके पिता का नाम लालजी और पितामह दशरथ साहू थे। आपने भैया, भविक, दासकिशोर- इन उपनामों एवं भगोतीदास तथा भगवतीदास-अपने इन नामों का स्वरचित पदों में प्रयोग किया है। इन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में उनके रचनाकाल का उल्लेख तो किया है, किन्तु न तो उन्होंने अपने जन्म की तिथि सूचित की और न ही परवर्ती लेखकों ने उनकी मृत्यु तिथि का कोई उल्लेख किया। अत: इनके जन्म और मृत्यु की तिथियों का सही उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। किन्तु इनकी रचनाओं में वि० सं० १७३१ से १७५५ तक के समय के उल्लेख से आपका जन्म सत्रहवीं शती के अंत या अठारहवीं शती के प्रारम्भ का समय निश्चित होता है। आपने आगरा के तत्कालीन मुग़ल शासक औरंगजेब (वि० सं० १७१५ से १७६४) का भी उल्लेख किया है।

जंबूद्वीप सु भारतवर्ष, तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष।
तहां उग्रसेनपुर थान, नगर आगरा नाम प्रधान॥
नृपति तहाँ राजै औरंग, जाकी आज्ञा बहै अभंग।
तहाँ जाति उत्तम बहु बसै, तामै ओसवाल पुनि लसै।
तिनके गोत बहुत विस्तार, नाम कहत नहिं आवै पार॥
सबतें छोटो गोत प्रसिद्ध, नाम कटारिया रिद्धि समृद्ध॥
दशरथ साहू पुण्य के धनी, तिनके रिद्धि वृद्धि अति घनी।

तिनके पुत्र लालजी भये, धर्मवंत गुणधर निर्मये ॥
तिनके पुत्र भगवतीदास, जिन यह कीन्हों "ब्रह्मविलास" ॥[1]

आपकी रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि आगरा के ही तत्कालीन, सुप्रसिद्ध विद्वान् महाकवि बनारसीदास के आप निकट सम्पर्क में रहे हैं । संभवतः आप उनके विद्वान् शिष्यों में से प्रमुख शिष्य रहे होगें । पं० बनारसीदास के समय आगरा जैन-विद्वानों का केन्द्र था । उस समय पं० बनारसीदास, पं० रामचन्द्र जी, चतुर्भुज वैरागी, भगवतीदास, मानसिंह, धर्मदास, कुंवरपाल और जगजीवनराम-इन विद्वान कवियों की अच्छी मण्डली थी ।[2]

पं० बनारसीदास के निकट सम्पर्क में होने के कारण आपने आचार्य कुन्दकुन्द कृत समयसार, आ० गुणभद्रकृत आत्मानुशासन, सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित गोम्मटसार, सिद्धान्तीदेव नेमिचन्द्र कृत द्रव्यसंग्रह आदि सिद्धान्त ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था । ब्रह्मविलास में संगृहीत आपकी काव्य रचनाओं पर इन ग्रन्थों का स्पष्ट प्रभाव है । इसमें संकलित प्राकृत द्रव्यसंग्रह ग्रंथ का कवित्तबद्ध हिन्दी अनुवाद तो प्रमुख रचनाओं में से एक है ।

ब्रह्मविलास लगभग ७१ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था, किन्तु आजकल अनुपलब्ध है ।[3] प्रस्तुत सम्पादन कार्य में इस ब्रह्मविलास में संकलित 'पंचेन्द्रिय संवाद' को' 'ब' प्रति के रूप में तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थ को 'अ' प्रति के रूप में उपयोग के साथ सम्पादन का कार्य किया गया है । दोनों प्रतियों में पर्याप्त पाठभेद तो हैं ही, 'ब' प्रति में अनेक अशुद्धियाँ भी थीं । इन सबका मिलान एवं पाठभेद निर्धारण पूर्वक इस महत्त्वपूर्ण कृति का सम्पादन करके इस रूप में इसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

हस्तलिखित पाण्डुलिपि का परिचय- 'पंचेन्द्रिय संवाद' नामक इस लघुग्रंथ की पाण्डुलिपि पार्श्वनाथ विद्यापीठ के पुस्तकालय में संरक्षित है । इसके रचयिता 'ब्रह्मविलास' नामक सुप्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ के लेखक भैया भगवतीदास जी हैं । प्रस्तुत प्रतिलिपि पं० गोविंद ओसवाल द्वारा संवत् १९१० में की गई है । इस

---

१. ब्रह्मविलास के अन्त में ग्रन्थकर्ता परिचय के रूप में प्रस्तुत चौपाई में कहा है
२. ब्रह्मविलास, पृ० ३०५
३. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन - भाग १, डॉ० नेमिचन्द्रशास्त्री, पृ. २४५. भारतीय ज्ञानपीठ काशी, सन् १९५६
४. ब्रह्मविलास - संशोधक पं० वंशीधर जी न्यायतीर्थ प्रकाशक -पन्नालाल वाकलीवाल, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, चंदावाड़ी, बम्बई, द्वितीय संस्करण सन् १९२६, (प्रथम सं० सन् १९०४)

प्रतिलिपि में कुल ४ पत्र (८ पृष्ठ) हैं। इनके दोनों ओर लिखा गया है। प्रत्येक पत्र की लम्बाई १०$\frac{3}{4}$'' और चौड़ाई ५'' हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर १६-१६ पंक्तियां हैं, अंतिम पत्र के एक ओर १५ पंक्तियां तथा दूसरी ओर १० पंक्तियां हैं। प्रत्येक लाइन में लगभग २० से २२ शब्द तक हैं। पत्र के चारों ओर करीब १ इंच जगह छोड़कर बीचों बीच लेखन कार्य किया गया है। लिखावट सुस्पष्ट है। प्रस्तुत सम्पादन कार्य इसे आदर्श प्रति के रूप में 'अ' प्रति मानकर इसके आधार पर ही कार्य किया गया है। यह ग्रंथ पद्यमय है। इसमें दोहा, चौपाई आदि छन्दों का विशेष प्रयोग किया है। यदा-कदा घत्ता आदि छंद भी हैं। सम्पूर्ण संवाद में १५२ पद हैं। प्रारम्भ में मंगलाचरण के पूर्व "अथ पंचेन्द्रिय की चौपाई लिख्यते" इस तरह ग्रन्थ प्रारम्भ किया गया है। प्रतिलिपिकार ने समापन इस तरह किया - "इती पंचेन्द्रिय संवाद समाप्तं संवत् १९१० पोषमासे कृष्णपक्षे अष्टमी तिथौ शुक्रवार लिपिकृत गोविन्द उसवाल दैवतपुर नगर मध्ये ॥"

पंचेन्द्रिय संवाद : एक परिचय- यह आध्यात्मिक रूपक काव्य है। पुरानी हिन्दी भाषा के जैन कवियों द्वारा रचित इस तरह के अनेक रूपक काव्यों द्वारा सूक्ष्म भावनाओं का विश्लेषण किया है। उन्होंने अपने इन लघु रूपक काव्यों में नैसर्गिक पात्रों की कल्पना कर उनके व्याख्यानों द्वारा जीवन के प्रकाश और अंधकार पक्ष की मौलिक रूप उद्भावना में की है। इन रूपकों का उद्देश्य मनुष्य को ज्ञान और क्रिया आदि की महत्ता द्वारा दुःख की निवृत्ति दिखलाकर लोककल्याण और उसके वैभव की प्रतिष्ठा कर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर करना है।

आध्यात्मिक रूपक काव्य के रचनाकारों में मुख्यतः महाकवि बनारसीदास, भैया भगवतीदास आदि कवियों का नाम गौरव से लिया जाता है। भैया भगवतीदास जी द्वारा रचित अनेक रूपक काव्य उपलब्ध हैं, जिनमें मधु-बिन्दुक चौपाई, चेतन-कर्म चरित्र, उपादान-निमित्त संवाद, गुरु-शिष्य प्रश्नोत्तरी, पंचेन्द्रिय संवाद आदि प्रमुख हैं। इनमें भी पंचेन्द्रिय संवाद बड़ा ही मार्मिक रूपक-काव्य है। कवि ने इसमें पाँच इन्द्रियों तथा मन को पात्र रूप में प्रस्तुत करके प्रत्येक इन्द्रिय के द्वारा स्वयं उनकी विभिन्न भावनाओं के साथ ही अपनी-अपनी महत्ता और गरिमा वर्णन तथा एक दूसरे की निंदा (आलोचना) करते हुये दिखाया है। इन्द्रियों के पक्ष-विपक्ष को प्रस्तुत संवाद में कवि ने दोहा, सोरठा, घत्ता के अतिरिक्त विभिन्न प्राचीन दुर्लभ (तत्कालीन प्रसिद्ध लोक प्रचलित) राग-रागिनियों, ढालों को आधार बनाकर कई पदों की रचना की है। पद के प्रारंभ में ही उन रागिनियों तथा ढाल का नाम देते हुये, नमूने के तौर पर उनकी एक पंक्ति को प्रस्तुत कर दिया है। ये ढालें उस समय जन सामान्य में सहज गेय रही होंगा।

जैसे आज विभिन्न लोकप्रिय फिल्मों के कर्णप्रिय बहुप्रचलित गीत सुनते-सुनते सभी को याद रहते हैं। तथा कुछ लोग इन फिल्मी गानों की धुनों अर्थात् गीत के बोलों के आधार पर अन्य भजन आदि तैयार करते हैं। प्रस्तुत रूपक में कवि ने राग-काफी धमाल (पद ३६ से ४५) में ढाल-वनमाली को बागि चंपा मौली रह्यो, इह देसी (५४-६५), देसी चौपाई ढाल-रे जीया तो बिन घड़ी रे छ मास (७४-८५), सोभांगी सुंदर-यह ढाल देसी 'मोरी सहियो रे लालन आवैगो (९६-१०७)- इस तरह उस समय प्रचलित एवं लोकप्रिय अनेक ढालों के उदाहरणों का उल्लेख करते हुये पदों की रचना की है।

पुरानी हिन्दी में लिखित इस रूपक काव्य पर गुजराती, ब्रज आदि भाषाओं का स्पष्ट प्रभाव है। तद्भव शब्दों की प्रचुरता है। अलंकार आदि का आरोपण न करते हुये कवि ने इन्द्रियों द्वारा उनके पक्ष की पुष्टि के लिए उनके द्वारा पौराणिक कथाओं के सुप्रसिद्ध पात्रों, जैसे- राम, सीता, दशार्णभद्रमुनि, अभयकुंवर, शालिभद्र, श्रेणिक, गजसुकुमाल, सेठ सुदर्शन आदि का यथास्थान उल्लेख किया है।

इस तरह की अनेक विशिष्ट विशेषताओं से युक्त यह संवाद रूपक काव्य बहुत ही रोचक बन पड़ा है, जिसका कथानक संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है -

एक सुन्दर बगीचे में मुनिराज की धर्मदेशना की सभा में एकत्रित श्रावकगण शंकाओं, जिज्ञासाओं के समाधानों की चर्चा मुनिराज से कर रहे थे। तब एक व्यक्ति ने पंचेन्द्रियों के विषय में प्रश्न किया कि ये दुःखकर हैं या सुखकर ? मुनिराज जी द्वारा इन्हें दुःखकर बतलाने पर, सभा में उपस्थित एक विद्याधर ने पंचेन्द्रियों को सुखकर बतलाते हुए इंद्रियों का पक्ष लिया। तब मुनिराज ने कहा - पंचेन्द्रियों की श्रेष्ठता, उन्हीं के द्वारा सुनी जाये, अतः पाँचों इन्द्रियों में जो श्रेष्ठ हो तर्कों द्वारा वही अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करेगी। इन वचनों को सुनकर नाक, कान, आंख, रसना, स्पर्श- इन पंचेन्द्रियों में आपस में परनिन्दा और आत्मप्रशंसा की तकरार परस्पर सम्वाद द्वारा प्रारम्भ हो गई, जिसे अनेकों संदर्भों, उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया। अंत में पाँचों इन्द्रियों के वाद-विवाद को सुनकर 'मन ने' सबकी अनुपयोगिता बतलाते हुए स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया।

पंचेन्द्रियों तथा मन के संवाद के पश्चात् मुनिराज जी ने मन को संबोधित किया कि तुम ही ज्यादा चंचल हो और इन्द्रियों को भ्रमण कराते रहते हो। मन ने अपना दोष समझकर परमात्मा प्राप्ति के लिए मुनिराज जी से प्रार्थना की। तब मुनिराज जी ने अपनी धर्मदेशना द्वारा परमात्मपद प्राप्ति का मार्गदर्शन किया।

इस पंचेन्द्रिय संवाद रूपक काव्य में इन्द्रियों के उत्तर-प्रत्युत्तर बड़े ही सरस और स्वाभाविक हैं। इन्द्रियों की आत्मप्रशंसा के कथन से भी पाठक प्रभावित हुये बिना नहीं रहता।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि के सम्पादन में पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक डॉ० सागरमल जैन का मार्गदर्शन एवं सहयोग प्राप्त हुआ है, जिसके लिये मैं हृदय से आभारी हूँ। इस क्रम में आगे के अंकों में भी इस तरह अप्रकाशित के लघु ग्रन्थों (पाण्डुलिपियों) को प्रकाशित करने का प्रयास रहेगा। प्रस्तुत पंचेन्द्रिय संवाद का संपादित संशोधित मूल पाठ यहाँ प्रस्तुत है।

पंचेन्द्रिय संवाद

अथ पंच-इंद्रिन की चौपाई लिख्यते -

दोहा: मंगलाचरण

प्रथम प्रणमि जिनदेव को, बहुरि प्रणमि जिनराय[१] ।
साधु सकल के चरन को, प्रणमुं सीस नवाय[२] ।।१।।
नमो[३] जिनेश्वर वैन कौं, जगत जीव सुखकार ।
जिस प्रसाद घटपट खुलैं, लहिये बुद्धि[४] अपार ।।२।।

संवाद की पृष्ठभूमि : मुनिराज की धर्मदेशना :

इक दिन उद्यान मैं, बैठे श्री मुनिराज ।
धर्मदेशना देत हैं, भव्य जीव[५] के काज ।।३।।
समदृष्टि श्रावक तहाँ[६], और मिले बहु लोक ।
विद्याधर क्रीडा करत, आय गये बहु थोक ।।४।।
चली बात व्याख्यान मैं, पांचौं इंद्री दुष्ट ।
त्यों त्यों ए दुःख देत हैं, ज्यों ज्यों कीजै पुष्ट ।।५।।
विद्याधर बोले तंहा, करि इंद्रिय कौ पच्छ[७] ।
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रतच्छ[८] ।।६।।

पाँचों इन्द्रियों द्वारा अपनी महत्ता का एक साथ कथन -

हमही तैं सब जग लखे, यहि चेतन यही नाउं ।
इक इन्द्रिय आदिक सबै, पंच कहै जीय[९] ठाउं ।।७।।
हम ही तैं तप-जप होत है, हमतैं क्रिया अनेक ।
हम ही तैं संयम पलै, हम बिन होय न एक ।।८।।
रागी-दोषी हो जिय, दोस हमहिं किम देहु ।
न्याव हमारो कीजीये, यह विनती सुन लेहु ।।९।।
हम तीर्थंकर देव पै, पाँचों है परतच्छ ।
कहो मुकति क्यों जात हैं, निज भावन कर स्वच्छ ।।१०।।

---

१. ब प्रति -शिवराय
२. अ प्रति निवाय
३. अ प्रति नमहूं
४. अ प्रति लहीयै बुद्ध
५. ब प्रति भवि जीवन
६. अ प्रति तहों
७. पक्ष
८. प्रत्यक्ष
९. ब प्रति - जिहं

नाक कांन नैना कहै, रसना फरस विख्यात ।
हम काहू रोकै नहीं, मुक्त लोक मैं जात ॥११॥

पांचों इन्द्रियों में श्रेष्ठ कौन ?

स्वामी कहै तुम पांच हौ, तुममैं कौन सिरदार ।
तिनसैं चरचा कीजीयै, कहो अर्थ निरधार ॥१२॥

१. घ्राणेन्द्रिय द्वारा आत्म-प्रशंसा -

नाक कहै प्रभु मैं बडौ, मोतैं बडो न कोइ ।
तीन लोक रक्षा[1] करै, नाक कमी जिन होई ॥१३॥
नाक रहै तो सब रहै, नाक गए सब जाय ।
नाक बरोबर जगत मैं, और न बड़ो कहाय ॥१४॥
प्रथम वदन पर देखीयै, नाक नवल आकार ।
सुंदर महा सुहावनौ, मोहै लोक अपार ॥१५॥
सीस नमत जगदीस कौं, प्रथम नमत है नाक ।
त्यौं ही तिलक विराजतौ, सत्यारथ जग वाक ॥१६॥

चौपाई, भाषा-गुजराती

नाक कहै जगि हु बड़ो, मुझ सुनौ सब कोई रे ।
नाक रहै पत[2] लोक मैं, नाक गए पत खोई रे ॥१७॥
नाक राखन के कारणौ, बाहुबलि बलवंत रे ।
देस तज्यौ दीक्षा ग्रही, पण न नम्यो चक्रवंत रे ॥१८॥
नाक राखण कै कारणौ, रामचन्द्र जुध[3] कीधो रे ।
सीता राणी[4] बलकरी, बलतै संजम लीधो रे ॥१९॥
नाक रखन सीता कीयौ, अगन कुंड मैं पैठी रे ।
सिंघासन देवन रच्यौ, तिहं उपर जा बैठी रे ॥२०॥
दसार्णभद्र महामुनी, नाक राखन व्रत लीधो रे ।
इंद्र नम्यौ चरनै तहां, मान सकल तजि दीधो रे ॥२१॥
सागर हुवो रो धनी[5] छलथी दीक्षा लीधो रे ।
नाक तनी लज्जा करी, फिर नवि मन-सा कीधो रे ॥२२॥
अभय कुंवर श्रेणिक, तणो, बेटो आज्ञाकारी रे ।
तुंकारौ तानै दीयौ, तत्क्षण दीक्षा धारी रे ॥२३॥

---

१. 'अ' प्रति रिच्छा
२. इज्जत
३. युद्ध
४. अणि
५. ब प्रति आणि
६. ब प्रति-सगर थयो सौरों धणी

नाम कहूं केता तणा, तस्या जग मांही रे ।
नाक तणै परसादथी, सिव संपत बिलसाही रे ॥२४॥
सुख विलसै संसारना, ते सब मुझ परसादै रे ।
नाना वस्तु सुगंधता, नाक सकल आस्वादै रे ॥२५॥
तीर्थंकर त्रिभुवन धनी, तेना तन निवासो[1] रे ।
परम् सुगंधो महा[2] लसै, ते सुख नाक निवासो रे ॥२६॥
और सुगंधो अनेक छै, ते सब नाकज जाणै रे ।
आनंदमां सुख भोगवै, 'भैया' एम बखाणै रे ॥२७॥

२. कर्णेन्द्रिय द्वारा घ्राणेन्द्रिय की आलोचना

कान कहै रे नाक सुणि, तू कहा करै गुमांन ।
जौ चाकर आगै चलै, तो नहि भूप समान ॥२८॥
नाक सुरनि पानी झरे, बहै सलेष्म अपार ।
गुंगनि[3] करि पूरित रहै, लाजै नहीं गँवार ॥२९॥
तेरी छीक सुनै जितै, करै न उत्तम काज ।
मूदैं तोहि दुर्गंध मैं, तउ न आवै लाज ॥३०॥
वृषभ ऊँट नारी निरख[4], और जीव जग मांहि ।
जित तित तोकौ छेदीयै, तउ लज्जा तौ नांहि ॥३१॥

कर्णेन्द्रिय द्वारा आत्म-प्रशंसा -

कान कहौ जिन बैन कौं, सुनै सदा चितलाय ।
जिस प्रताप इस जीव कौं, सम्यक् दरसन थाय ॥३२॥
कानन कुंडल झलकता, मणि मुकता फल सार ।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार ॥३३॥
सातौ सुर कौ गायवौ, अद्भुत सुख कौं स्वाद ।
इन कांनन करि परखिये-मीठे-मीठे नाद ॥३४॥
काननि सुनि श्रावक भये, कानिनि सुनि मुनिराज।
काननि सुनि गुन दर्व (द्रव्य) के, कान बड़ों सिरताज ॥३५॥

चौपाई, राग-काफी धमाल मैं

टेक- काननि ध्यान धाईए हौ चिनमूरति चेतन पाईए हौ- इह आंकनी[5] ।
कांन सरभर को करे हो, कान बड़े सिरदार ।
छहौ द्रव्य के गुण सुनै हो, जाने सकल विचार ॥३६॥ टेक

---

१. ब प्रति तेहना तनमा वासो
२. ब प्रति - घणीं
३. ब प्रति- गूंघनि
४. अ प्रति- काम कहेट नारी रखा
५. ब प्रति- काननि सुनि ध्यान धयाइये हो, चिमूरति चेतन पाइये हौ

संघ चतुरबिध सब तरै हो, काननि सुनि जिन बैन ।
निज आतम सुख अनुभवै हौ, पावै सिव पद ऐन ।।३७।। काननि०
द्वादसांग वानी सुनैहौ, काननि के परसाद ।
गणधर तौ गिरवा[1] कह्यौ हो, दर्व-सुरति(द्रव्य-सूत्र)सब याद ।।३८।। काननि०
काननि सुनि भरतेश्वरे हौ, प्रभु कौ उपज्यौ ज्ञान ।
कियौ महोच्छव हरषसैं हौ, पायौ पद निर्वान ।।३९।। काननि०
विकट वैन धन्ना सुनै हौ, निकस्यौ तज आवास ।
दीक्षा गहि किरिया करि हो, पायो शिवगति वास ।।४०।। काननि
साधु अनाथी सों सुन्यौ हौ, सुनियो[2] जीव विचार ।
क्षापक समकित ते लह्यौ हौं, पावैगो भवदधि पार ।।४१।। काननि०
नेमिनाथ वानी सुनी हौ, लीनौ संजम भार ।
ते द्वारका के दाहसों हौं, उबरे हैं जीव अपार ।।४२।। काननि०
पार्श्वनाथ के वैन सुने हौ, महामंत्र नवकार ।
धरणीधर पद्मावती हौ, भए हैं अहि तहि वार ।।४३।। काननि०
काननि सुनि कानन गए हौ, भूपति तज बहु राज ।
काज सवारे आपनै हौ, केवलज्ञान उपाज ।।४४।। काननि०
जिनवाणी काननि सुणी हौ, जीव तरै जग माहिं ।
नाऊं (नाम) कहा लो लीजीयै हौ,"भैया" जे शिवपुर जाहि ।।४५।। काननि०

३. चक्षु-इंद्रिय द्वारा कर्णेन्द्रिय की आलोचना

दोहरा -

आंखि कहै रे कानि तू, इस्यौ करै अहंकार ।
मैलनि कर मूध्यौ[3] रहे, लाजै नहीं लगार[4] ।।४६।।
भली बुरी सुनितै रहै, तौरै तुरत सनेह ।
तोसौं दुष्ट न दूसरौ, धारी ऐसी देह[5] ।।४७।।
दुष्ट वचन सुनितै जरै, महाक्रोध उपजंत ।
तौ प्रसाद तै जीव बहु, नर्कें जाय पडंत ।।४८।।
पहिलै तोकौ भेधीकै[1], नर नारी के कांन ।
तौहू नाहि लजात है, बहुर धरै अभिमान ।।४९।।

---

१. ब प्रति -गुरुवा
२. ख प्रति-श्रेणिक
३. अ प्रति -मूथौ
४. अ प्रति-गेवार
५. अ प्रति - धरयौ इनकी देख

चक्षु इंद्रिय द्वारा आत्मप्रशंसा -

कानिनि की बातै सुनी, सांची झूठी होइ ।
आंखनि देखी बात जौ, तामै फेर न होइ ।।५०।।
इन आंखनि सौ देखीयै, तीर्थंकर कौ रूप ।
सुख अनंत हिरदै बसै[२], सो जानै चिद्रूप ।।५१।।
आंखनि लखि रक्षा[३] करै, उपजै पुन्य अपार ।
आंखनि के परसाद सौ, सुखी होत संसार ।।५२।।
आंखनितै सब देखीयै, मात-पिता[४] सुत-भ्रात ।
देव गुरु अरु ग्रंथ सब, आंखिनतैं विख्यात ।।५३।।

चौपाईनी-

ढाल- वनमाली को बागि चंपा मौलि रह्यौ इह देसी
आंखनि के परसाद, देखै लोक सवैरी ।
आवै निज पद याद, प्रतिमा पेखत बेरी ।।५४।। आख०
देख्या द्दग संधान[५], ग्रन्थ अनेक कह्यारी ।
जे भाख्या भगवंत, दर्वित तेह लह्यौरी ।।५५।। आं०.
समोसरन की रिद्धि, देखत हरष घनौरी ।
प्रभु दरसन फलसिद्धि, नाटक कौन गन्यौरी[६] ।।५६।।आखं
जिनमंदिर जैकार, प्रतिमा परम बनी री ।
देखत हर्ष अपार, थुति नही जाहि भनीरी ।।५७।। आ.
ईर्या समति निहार, साधु चलै जु भलै री ।
तौ पावै शिवनारि, सुख की कीर्त्त फलैरी ।।५८।। आं०
आंखनि विंब निहार, समकित सुद्ध लह्यौ री ।
गोत्र तीर्थंकर धार, रावण नाम कह्यौ री ।।५९।। आं०
बाधनि साधु विधारि[७], दंतहि दिष्ट[८] धरी री ।
पूरब भवहि निहार, त्यागनि देह करी री ।।६०।। आंख
चारौ परतेकबुद्ध[९], देखत भाव फिरेरी ।
लही निजातम सुद्ध, भवजाल वेग तिरेरी ।।६१।।आंख

---

१. ब प्रति- बेधिये
२. ब प्रति- सुख असंख्य हिरदै लसे.
३. अ प्रति-रिक्षा
४. ब प्रति-तात मात
५. ब प्रति - सिद्धान्त
६. ब प्रति -गिनोरी
७. व प्रति विदार
८. ब प्रति
९. प्रत्येक बुद्ध

पूरब भव आहार, देखत दिष्ट पस्थौरी ।
इहि चौबीस सार, अंसकुमार जु तस्यौरी ॥६२॥ आं०
सालिभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि पस्थौरी ।
गहि संजम को भार, आतम काज कस्योरी ॥६३॥ आं०
देख्यौ जुद्ध अकाज, दीक्षा वेगि ग्रहीरी ।
पांडव तज सब राज, निज-निधि बेग लहीरी ॥६३॥ आख०
कहै कहालौं नाऊ (नाम), जीव अनेक तरेरी ।
'भैया' शिवपुर ठाउ, आंखितै जाय भरेरी[1] ॥६५॥ आँख

४. जिह्व इन्द्रिय द्वारा चक्षु इन्द्रिय की आलोचना

जीभ कहै रे आंखि तुम, काहे गर्व करांहि ।
कांजलि करि जौ रंगिये, तौहू नाहिं लजांहि ॥६६॥
कायर ज्यौं डरती रहै, धीरज नहिं लगार ।
बात-बात में रोय दै, बोलै गर्व अपार ॥६७॥
जहाँ तहाँ लागी फिरे, देख सलौनो रूप ।
तेरे ही परसादतैं, दुख पावै चिद्रूप ॥६८॥
कहा कहौ द्रग दोष को, मोपै कहौ न जांहि ।
देखि विरानि[2] वस्तु कौं, बहुरि तहाँ ललचांहि ॥६९॥

जिह्वा द्वारा आत्मप्रशंसा -

जीभ कहै मोतै सबै, जीवत है संसार ।
षट्‌रस भुज्यौ स्वाद ल्यौं, पालूं सब परिवार ॥७०॥
मो बिन आंखि न खुल सकै, कान सुनै नहि बैन ।
नाक न सूंघौ वास कौ, यो बिन कहूं न चैन ॥७१॥
मंत्र जपत इहि जीभ सौं, आवत सुरनर धाय ।
किंकर ह्वै सेवा करै, जीभहिं के सुपसाय ॥७२॥
जीभहीं तैं जपत रहैं, जगत जीव जिननाम ।
जसु प्रसादतैं सुख लहै, पावैं उत्तम ठाम ॥७३॥

अथ देसी-चौपाई - ढाल "रे जीया तो बिन घड़ी रे छ मास"
जतीश्वर ! जीभ बड़ी संसार, जपै पंच नवकार ॥टेक॥ जतीश्वर०

---

१. ख प्रति - बरेरी   २. ख प्रति विनासी(विरानी=पराई)

द्वादशांग वानी श्रवैजी, बोले वचन रसाल ।
अर्थ कहै सूत्रन सबैजी, सिखवै धर्म विशाल ।।७४।।जती०
दुरजन तै सज्जन करैं जी, बोले मीठे बोल ।
अैसी कला न और पैं जी, कान आंख किह तौल[१] ।।७५।।जतीश्वर०
जीभ हीतैं सब जीतियै जी जीभ हीतैं सब हार ।
जीभ हीतैं सब जीव कौ जी, कीजतु हैं उपगार ।।७६।। जती०
जीभ होतैं गनधर भए जी, भव्यन पंथ दिखाय ।
आपन वै सिवपुर गए जी, कर्म कलंक खपाय ।।७७।। जतीश्वर०
जीभ होतैं उवझाय भए जी, पावै पद परधान ।
जीभ हीतैं समकित लह्यौ जी, परदेशी परधान ।।७८।। जती०
मथुरा नगरी में हुवौ जी, जंबू नाम कुमार ।।
कहिकै कथा सुहावनी, प्रतिबोध्यो परवांन[२] ।।७९।। जती०
नारी वनसौ[३] विरचै भलैजी, बाल महामुनि बाल ।
अष्टापद मुगतेम[४] गए जी, देखहुं ग्रंथ निहाल ।।८०।। जती०
मेटै उरझ उर की सवै जी, पूछौ पदंम[५] प्रतछ ।
प्रगट लहै परमात्मा जी, विनसै भ्रमकौ पक्ष ।।८१।। जती०
तीन लोक मै जीभ मैं, जू[६] दूर करै अपराध ।
तौ प्रतिक्रमण क्रिया करे जी, पढि समझावहि[७] साध ।।८२।। जती०
जीभ हीतै सब गाइयै जी, सातुं सुर के भेद ।
जीभ हीतै जसु जपियै जी, जीभ पढहि सब वेद ।।८३।। जती०
नाम जु जीभहिं लीजीयै जी, उत्तर जीभही होइ ।
जीभ ही जीव खिमाइयैजी, जीभ समो नहि कोइ ।।८४।। जती०
केते जीव मुकतै गए जी, जीभ ही के प्रसाद ।
नाम कहा लग लीजीयै जी, 'भैया' बात अनाद ।।८५।। जती०

५. स्पर्श (फरस) इन्द्रिय द्वारा जीभ की आलोचना-

दोहरा

फरस कहै रे जीभ तूं, एतौ गर्व करंत ।
तौ लागै झूठो कहैं, तौहु नाहि लजंत ।।८६।।

---

१. ब प्रति- पै लोल
२. ब प्रति - परिवार
३. ब प्रति - रावनसों
४. ब प्रति - मुक्ते
५. ब प्रति - प्रश्न
६. ब प्रति - ही जी
७. ब प्रति सिझाये

कहै वचन करकस बुरे रे, उपजै महा कलेश ।
तेरे ही परसाद तैं, भिड़-भिड़ मरे नरेस ॥८७॥
तेरे ही रस काज कौ, करत आरंभ अनेक ।
तौहि तृप्ति क्यौं नही, तातै सवै उदेक ॥८८॥
तोमैं तौ औगुन घने, कहत न आवै पार ।
तौ परसाद तै सीस कौ, जात न लागै बार ॥८९॥
झूठै ग्रंथन तू पढै, दै झूठो उपदेश ।
जीयकौ जगत फिरावती, औरहु कहा करेस[1] ॥९०॥
जा दिन जीव थावर वसत, ता दिन तुम मैं कौन ।
कहा गर्व खोटो करै, आंखि-नाक-मुख श्रोन ॥९१॥
जीव अनतें हम धरे, तुम तौ संखि असंखि ।
तितहू तौ हम बिन[2] नहीं, कहा उठत हौ झांखि ॥९२॥
नाक कांन नैना सुनौ, जीभ कहा गर्वाय ।
एक कोऊ सिर नायकै, लागत मेरे पाय ॥९३॥
झूठी-झूठी सब कहै, सांची कहै न कोय ।
बिन काया के तप तपै, मुक्त कहा तैं होय ॥९४॥
सहै परीसहि बीस द्वै, महाकठन मुनिराज ।
तप तौ कर्म्म खपाइकै, पावत है सिवराज ॥९५॥

स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा आत्मप्रशंसा -

सोभागी सुंदर- यह ढाल-देसी - (मोरी सहियो रे लाल न आवैगो...)
टेक - मोरा साधु जी फरस बडों संसार, करै कई उपगार ॥मोरा०॥
दक्षिण करसौं दीजीयै, दान जिनेश्वर देव[3] ।
तौ तिह भौ सौ[1] पद लहै मिटे करम की टेव[2] ॥९६॥
दान देत मुनिराज कौ जू, पावत परमानंद ।
सुन नर कोटि सेवा करै जी, पाय तेज अनंत[3] ॥९७॥ मोरा०
नर नारी कोउ धरो जू, सील व्रतहि सरदार ।
सुख अनंत सो जीय लहै जी, देखो फरस प्रकार ॥९८॥ मोरा०
तपकर काया कृस करै रे, उपजै पुन्य अपार ।
सुख विलसे सुरलोक के ए, अथवा भवदधि पार ॥९९॥ मोरा०

---

१. ब प्रति - और हू करे क्लेश २. अ प्रति - दिन
३. ब प्रति - अनेक प्रकार

भाव जु आतम भावतो रे, सो बैठो मुहि मांहि ।
काया बिन क्रिया नहीं रे, किरया बिन सुख नांहि ।।१००।।मोरा०
गज सुकुमाल गिरयौ नहीं रे, फरस तपत भई जोर ।
केवलज्ञान उपजि कै रे, पहुचै शिवगत ओर ।।१०१।।मोरा०
खंदक रीषि की खाल उतरी रे, सहे परीसह जोर ।
पूरब बंध छूटे नहीं रे, घट गए कर्म कठोर ।।१०२।।मोरा०
देखहु मुनि दमदंत कौ रे, कौरों करी उपाधि ।
ईटनमैं ग्रमत[४] भयौं रे तहु न तजी समाधि ।।१०३।। मोरा०
सेठ सुदर्शन कौ दियौ रे, राजा दंड प्रहार ।
सह्यौ परीसह भाव सौ रे, प्रगट्यौ पुन्य अपार ।।१०४।।मोरा०
प्रसनचंद सिर फर सियौरे, फरस गए सब भाव ।
नर्कही तजु सिवगत लही रे, देखउ फरस उपाव ।।१०५।।मोरा०
जेते जीव मुकत गए रे, फरस ही के उपगार ।
पंच महाव्रत बिन धरै रे, कोउ न उतर्‌यो पार ।।१०६।। मोरा०
नाउं कहा लौं लीजीयै रे, वीत्यौ काल अनंत ।
'भैया' सब[५] उपगार को रे, जानत श्री भगवंत ।।१०७।। मो० ।।

६. मन द्वारा स्पर्शन इन्द्रिय की आलोचना

सोरठा

मन बोल्यौ तिह ठौर, अरे फरस संसार में, ।
तूं मूरख सिरमौर, कहा गरब झूठौ करे ।।१०८।।
इक अंगुल परमान, रोग छानवें भरि रहै ।
कहा करे अभिमान, देखि अवस्था नर्क की ।।१०९ ।।
पांचौं अव्रतसार[१], तिन सेती नित[२] पोखियै ।
उपजै केइ विकार, एतै पै अभिमान इह ।।११०।।
छिन इक मैं खिर जाय, देख दृिष्ट शरीर यह ।
एतै पैं गर्वाय, तौ ते मूरख कौ नही[३] ।।१२१।।

मन द्वारा आत्मप्रशंसा -

घत्ता -

मन राजा मन चक्रि है[४], मन सबको सिरदार ।
मन सौं बड़ौ न दूसरो देख्यो इहि संसार ।।११२।।

---

१. ब प्रति- भव शिव
२. ब प्रति- मिटै मरन की मार
३. ब प्रति -पतपै तेज दिनंद
४. ब प्रति- गर्भित (गर्म) ताप युक्त
५. ब प्रति - मुझ

मनतैं सबकौ जानियै, जीव जितो जग माहि ।
मनतैं कर्म खपाइये, मन सरवर कोउ नांहि ॥११३॥
मन तै करुना कीजीयै, मनतैं पुन्य अपार ।
मनतैं आतम तत्त्व को, लखियै सबै विचार ॥११४॥
मन संजोगी स्वामि पै, सत्य रह्यौ ठहराय ।
चार कर्म के नासतैं, मन नहि नासौ जाय ॥११५॥
मन इंद्रिन को भूप है, इंद्री मन के दास ।
यह तो बात प्रसिद्ध है, कीना जिन-परकास ॥११६॥

मुनिराज का मन के प्रति कथन -

तब बोलै मुनिराय जी, मन को गर्व करंत ।
देखो तंदुल मच्छ कौं, तुमतै नर्क पडंत ॥११७॥
पाप जीव कोउ करे, तूं अनमोदे ताहि ।
ता सम पाली तूं कह्यौ, अनरथ लेय विसांहि[५] ॥११८॥
इंद्रीतौ बैठी रहै, तूं दौरे निशदीस ।
छिन-छिन बांधे कर्म कौ, देखत है जगदीस ॥११९॥
बहुत बात कहियै कहा, मन सुनि एक विचार ।
परमातम को ध्याइयै, ज्यौ लहीयै भव पार ॥१२०॥

मुनिराज से सही मार्गदर्शन हेतु मन की प्रार्थना -

मन बौल्यौ मुनिराज सौं. परमातम है कौन ।
स्वामी ताहि बताइये, ज्यौं लहीयै सुख भौन ॥१२१॥
आतम कौ हम जानतै, जो राजत घट मांहि ।
परमातम किह ठौर है, हम तौ जानत नांहि ॥१२२॥

मुनिराज की धर्मदेशना -

परमातम उहि ठौर है, राग द्वेष जहां नांहि ।
ताकौ ध्यावत जीव यह, परमातम ह्वै जांहि ॥१२३॥
परमातम द्वैविध लसै, सकल निकल परवान[१] ।
तिसमें[२] तेरे घट वसै, देखि तहि[३] धरि ध्यान ॥१२४॥

ढाल- कपूर तणी मैं यह देसी[४]-

टेक-"आतम धरम अनूप रे, प्राणी जामै प्रगट चिद्रूप रे, प्राणी" यह आकणी है ।

---

१. पाँच अव्रत अर्थात् हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह रूप पांच पाठ
२. (अ प्रति) निज वही
३. ब प्रति कौन है
४. अ प्रति चक्क वै
५. अ प्रति वसाय

इंद्रन की संगति कियै रे, जीव पड़ै जगमांहि ।
जनम-मरण बहु दुख सहै रे, कबहूं छूटें नांहि[५] ।।१२५।। रे प्रानी
भरम पर्यों रस नाक कै रे, कमल मुद्रित भए नैन ।
केतक[६] कांटन वेधीयौ रे, कहूं बन पायौ चैन ।।१२६।। रे प्राणी०
कांनन की संगत कीयै रे, मृग मारयौं वन माहि ।
अहि पकर्‌यौ रस कांनकै रे, कितहूं छूटयौ नांहि ।।१२७।। रे प्राणी०
आखिनि रूप निहरिकै रे, दीप परत है धाय ।
देखो प्रगट पतंग कौ रे, खोवत अपनी काय ।।१२८।। रे प्राणी०
रसना रस मछ मारीयो रे, दुरिजन करि विसवास ।
जातै जगत विगूचीयो रे, सहै नरक दुख वास ।।१२९।।रे प्राणी०
फरस हितै गज वस पर्यौरे, वांधों संकल तांनि ।
भूख प्यास बहु दुख सहै रे, किहि विध कहै वखान ।।१३०।। रे प्राणी०
पांचौ इन्द्री प्रीति सौं रे, जीव सहै दुख घोर ।
काल अनंतौ जग फिरै रे, बहुरि न पावै ठौर ।।१३१।। रे प्राणी०
मन राजा कहिये बडो रे, इंद्रिन कौ सिरदार ।
आठ पहर प्रेरत रहै रे, उपजै कई विकार ।।१३२।। रे प्राणी०
मन इंद्रिय संगति कियै रे, जीव पड़ै जग जोय ।
विषयनि की इच्छा बढ़ै रे, कैसे शिवपुर होई रे ।।१३३।। रे प्राणी०
इंद्रीय तै मन होई वस रे[७], जोरियै आतम मांहि ।
तौरियै नातो राग सौ रे, फोरियै, बल सौ थांहि ।।१३४।। रे प्राणी०
इंद्रिन नेह निवारियै, टारियै क्रोध कषाय ।
धारियै संपत सासती रे, तारियै त्रिभुवन राय ।।१३५।। रे प्राणी०
गुन अनंत जामै लसै रे, केवल दरसन आदि ।
केवलज्ञान विराजतौ रे, चेतन चिन्ह अनादि ।।१३६।। रे प्राणी०
फिरता काल अनादि लौ रे, राजै जिहि पद मांहि ।
सुख अनंत स्वामी बहै रे, दूजै कोऊ नांहि रे ।।१३७।। रे प्राणी०
शक्ति अनंत विराजतौरे, दोष न जामै कोय ।

---

१. ब प्रति - परमान
२. अ प्रति - तास म
३. अ प्रति - दिष्ट
४. ब प्रति-ढाल- कपूर हुवै अति उजलो रे मिरिया सेती रंग ऐ देशी ।।
५. अ प्रति केवल
६. ब प्रति- केतकी
७. ब प्रति - मन मारियै रे

समकित गुन करि सोभतो रे, चेतन लखीयै सोय ॥१३८॥ रे प्राणी०
आव[१] घटे कबहुं नही रे, अविनासी अविकार।
भिन्न रहै परदर्व[२] सौ रे, सो चेतन निरधार ॥१३९॥ रे प्राणी०
पंच वरन में जो नहीं रे, नहीं पंच रस माहिं[३]॥
आठ फरस सौं भिन्न रहै रे, गंध दोउ कोहु नाहि ॥१४०॥ रे प्राणी०
जानत जो गुन दर्व के[४] रे, उपजन विनसन काल।
सो अविनासी आतमा रे, चिन्हहु चिन्ह दयाल ॥१४१॥ रे प्राणी०
गुन अनंत या ब्रह्म के रे, कहियै किह विध नाम।
"भैया" मन-वचन-काय सौ रे कीजै तिह परनाम ॥१४२॥ रे प्राणी०

दोहा -

परदर्वन[६] सौ भिन्न जौ, सुकी[७] भाव रसलीन।
सो चैतन परमात्मा, देखौ ज्ञान प्रवीन ॥१४३॥
जो देखे गुन द्रव्य के, जानै सबको भेद।
सो या घट मैं प्रगट है, कहा करन है खेद ॥१४४॥
सुख अनंत को नाह[८], यह चिदानंद भगवान।
दरशन ज्ञान विराजतौ, देखौ धरिनिज ध्यान ॥१४५॥
देखनहारौ ब्रह्म यह, घट-घट में परतछ।
मिथ्यातम के नासतैं, सूझै सबकौ स्वच्छ ॥१४६॥

---

१. आयु
२. परद्रव्य
३. अ प्रति- अविनासी अविकारी
४. ब प्रति द्रव्य के
५. ब प्रति परिणाम,
६. ब प्रति द्रव्मन
७. स्वकीय
८. ब प्रति नाथ

जैसे सिव तैसो इहाँ, 'भैया' फेर न कोई।
देखो समकित नैन सौं, प्रगट विराजै सोई ॥१४७॥
निकट ज्ञानदृग देखतैं, चिगट[1] चर्म दृग होइ।
चिकट मिटे जब राग कौ, प्रगट चिदानंद होइ ॥१४८॥
जिनवानी जो भगवती, तास-दास जो कोई।
सो पावै सुख स्वासतो[2] परम धरम पद होई ॥१४९॥

ग्रन्थ समाप्ति अन्त्य प्रशस्ति -

सत्रह सै[3] इक्यानवे, नगर आगरे मांहि।
भादौ सुदि शुभ दोज कौ, वाल ख्याल प्रगटांहि।
सुर समाहिं सब सुख बसै, कुरस मांहि कछु नांहि ॥१५०॥
दुरस बात इतनी ईहै, पुरुष प्रगट समझांहि।
गुन लीजै गुनवंत नर, दोष न लीजौ कोइ ॥१५१॥
जिनवानी हिरदे वसै, सबको मंगल होइ ॥१५२॥

इति पंचेन्द्रिय संवाद समाप्तं ।।

लिपिकार एवं उनका समय

संवत् १९१० पोष मासे कृष्ण पक्षे अष्टमी तिथौ शुक्रवार लिपिकृत गोविदं उसवाल दैवतपुर नगर मध्ये ॥=॥

१. ब प्रति सास्वते (शाश्वत)
२. ब प्रति विकट
३. ब प्रति - संवत सत्र ॥

प्रद्युम्नचरित में प्रयुक्त छन्द - एक अध्ययन

कु० भारती*

महासेन कविकृत प्रद्युम्नचरित संस्कृत भाषा में निबद्ध जैन परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। कविवर महासेन लाटवर्गट संघ के आचार्य थे। प्रद्युम्नचरित के प्रत्येक सर्ग के अंत में महासेन को सिन्धुराज (राजा भोज के पिता) के महामात्य पर्पट का गुरु बताया गया है। सिन्धुराज का समय ११वीं शती के लगभग प्रतीत होता है। अतः इस आधार पर महासेन का भी यही समय निश्चित होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रद्युम्न के जीवन-चरित एवं उनकी मधुर लीलाओं का साङ्गोपाङ्ग एवं सुरुचिपूर्ण वर्णन हुआ है। प्रद्युम्न श्रीकृष्ण के पुत्र एवं जैनधर्म सम्मत-२१ वें कामदेव थे। इस महाकाव्य में १४ सर्ग हैं और श्लोकों की कुल संख्या १५३२ है। प्रकृत महाकाव्य का आधार जिनसेनकृत हरिवंशपुराण है। संस्कृत वाङ्मय में छन्दशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वेद के छः अङ्गों में छंद सर्वाधिक विशिष्ट अङ्ग है। पाणिनीय शिक्षा में छंद को वेदपुरुष के पादों के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि छंदों के ज्ञान के बिना वेद मंत्रों का सम्यक् उच्चारण एवं भावबोधन नहीं हो सकता। "नाच्छन्दसि वागुच्चरति" अर्थात् छंद के बिना वाणी उच्चरित ही नहीं होती। वर्णन के अनुरूप उपयुक्त छन्दों का प्रयोग करने से काव्य की शोभा बढ़ जाती है। "सुवृत्ततिलक" के रचयिता क्षेमेन्द्र ने उन कवियों को कृपण कहा है जो अपने काव्यों में कम से कम छन्दों का प्रयोग करते हैं। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने कहा है- "छन्दहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्द-वर्जितम्।" इस प्रकार स्पष्ट होता है कि छन्द संस्कृत वाङ्मय का एक अत्यावश्यक अङ्ग है।

महासेन कवि ने प्रद्युम्नचरित में लगभग ३४ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। 'वसन्ततिलक' छंद का प्रयोग उन्हें सबसे अधिक प्रिय है। प्रस्तुत पत्र में छन्दों की दृष्टि से प्रद्युम्नचरित के प्रत्येक सर्ग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। **प्रथम सर्ग** में कुल ५१ श्लोक हैं जो **उपजाति**[१], **इन्द्रवज्रा**[२], **उपेन्द्रवज्रा**[३], **वसन्ततिलक**[४] व **शार्दूलविक्रीडित**[५] छन्दों में निबद्ध हैं। इस सर्ग का सर्वाधिक प्रयुक्त छन्द उपजाति है। प्रयुक्त छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं -

उपजाति[१]- (अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।)
(इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥)

---

* शोधछात्रा - पार्श्वनाथ विद्यापीठ (निर्देशक- डा० अशोक कुमार सिंह)

इसके चरण बिना किसी क्रम से इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के लक्षण वाले होते हैं। इसी प्रकार इसमें शालिनी और वातोंमी छन्दों के मिश्रण होते हैं या वंशस्थ और इन्द्रवंशा छन्दों का योग होता है जैसे -

श्रीमंतमानम्य जिनेन्द्रनेमिं
ध्यानाग्निदग्धाखिलघातिकक्षम्।
व्यापारयामास न यत्र वाणान्
जगद्विजेता मकर ध्वजोऽपि ॥१-१॥

इन्द्रवज्रा[७]- (स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥)
इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, तगण, जगण, और दो गुरु वर्ण होते हैं।

द्वीपोथ जंबूपपदोस्ति मध्ये
द्वीपांतराणामिव पार्थिवानाम्।
यो वाहिनीनाथवृतः सुवृत्तो
नित्यं जिगीषु प्रतिमश्चकास्ति ॥१-५॥

उपेन्द्रवज्रा[८]- (उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ) के प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं।

जिनेन्द्रवक्त्राम्बुजराजहंसीं
प्रणम्य शुक्लामथ भारतीं च।
उपेन्द्रसूनोश्चरितं प्रवक्ष्ये
यथागमं पावनात्मशक्त्या ॥

वसन्ततिलक[९] - (ज्ञेयं वसंततिलकं तभजा जगौ गः) के चारों चरणों में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु वर्ण होते हैं।

शंपेव कालजलदं शिखिनं शिखेव,
भानुं प्रभेव तनुचन्द्रमसं कलेव।
वेलेव मीननिलयं कमलेव पद्मं,
सालंचकार तमिलाधिपतिं मृगाक्षी ॥१-५०॥

शार्दूलविक्रीडित[१०]- (सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्) के चारों चरणों में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और गुरु वर्ण होते हैं।

शृण्वन् धर्मकथां नमन् गुरुजनं क्रीडन् कलत्रैः समं
कुर्वन् वैरिवल शरैरशरणं द्राक्कांदिशीकं रणे।
संरक्षन्निरुपद्रवं क्षितितल संभावयन सेवका -
नित्यं कालमनारतं क्षितिपतिर्निन्ये विनीतैर्वृतः ॥१-५१॥

द्वितीय सर्ग में ७५ श्लोक हैं जो त्रिविध छन्दों में निबद्ध हैं- वंशस्थ, द्रुतविलम्बित[१२] और वसंततिलक[१३]। इस सृर्गं का सर्वाधिक प्रयुक्त छन्द वंशस्थ है। पूर्व सर्ग में प्रयुक्त छन्दों से भिन्न जो प्रस्तुत सर्ग के अभिनव छन्द हैं, उनके लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं।

वंशस्थ[१४]- (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।) के चारों चरणों में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं। इसे वंशस्थविल या वंशस्तनित छंद भी कहा जाता है।

अथान्यदा पिंगजटः शुचिप्रभो
मृगाजिनाषाढधरो वृशीकरः।
हरेर्विधेर्वा सदनं समाययौ
नभस्तलान्नारदसंज्ञकोपि ॥२॥

द्रुतविलम्बित[१५]- (द्रुतविलम्बितमाह नभो भरौ।) के चारों चरणों में क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं।

इति निगद्य वचांसि वचोहरे
प्रियतमाप्रहिते प्रियवादिनि।
निजपंद प्रति संचलिते हरिः पदं।
क्षणमसौ हृदिशून्य इवाभवत् ॥७४॥

तृतीय सर्ग में ७७ श्लोक हैं जो पाँच प्रकार के छन्दों में निबद्ध हैं - रथोद्धता[१६], इन्द्रवज्रा[१७], वसन्ततिलक,[१८] शार्दूलविक्रीडित[१९] एवं प्रहर्षिणी[२०]। इस सर्ग में रथोद्धता छन्द का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। प्रस्तुत सर्ग के नवीन छन्द रथोद्धता एवं प्रहर्षिणी के लक्षण एवं उदाहरण इसप्रकार हैं -

रथोद्धता[२१]- (रात् परैर्नरलगै रथोद्धता) के प्रत्येक चरण में क्रमशः रगण, नगण,रगण लघु और गुरु वर्ण होते हैं।

कौतुकेन पुरमिद्धमीक्षितुं
नंदनं वनमिवागतं धराम्।
पाकशासनसमानतेजसौ
तद्वनं ददृशतुर्यदूत्तमौ ॥३/१॥

प्रहर्षिणी[२२]- (त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्) के चारों चरणों में क्रमशः मगण नगण, जगण, रगण और एक गुरु वर्ण तथा तीन और दस अक्षरों में यति होती है।

ज्ञातार्थो मुदितमनास्तथेति मत्वा
स्वां भूषां निजवसनैः प्रदाय चास्मै।
संप्रेष्य स्वमतवचोहरैश्च दूतं
तत्रासौ हरिरनघः सुखेन तस्थौ ॥३/७७॥

चतुर्थ सर्ग में ६५ श्लोक हैं जो तीन प्रकार के छन्दों में बद्ध हैं - द्रुतविलम्बित[२३], पृथ्वी[२४], वसन्ततिलक[२५]। इनमें द्रुतविलम्बित छंद का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। प्रस्तुत सर्ग के अभिनव छन्द **पृथ्वी** के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं -

(जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु:[२६])

अर्थात इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, यगण, लघु तथा गुरु वर्ण होते हैं। इसमें आठ तथा नौ वर्णों पर यति होती है।

प्रविश्य निजमंदिरं समुदितः समं बंधुभि-
न्यवेदयदिदं बने सुतमसूत मे वल्लभा।
ततो प्रकटगर्भिका विशतु सूतिगेहं मुद्रा
पुरं कुरुत खेचराः क्षणपरं परिहारि च ॥४/६३॥

पञ्चम सर्ग में १५० श्लोक हैं जो वसन्तलिक[२७] एवं शार्दूलविक्रीडित[२८] में बद्ध हैं। इनका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है।

षष्ठ सर्ग में ९२ श्लोक हैं जिनमें तीन छन्द-अनुष्टुप्[२९], उपजाति[३०] और हरिणी[३१] प्रयुक्त हुए हैं - अभिनव छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं -

अनुष्टुप्[३२]

(पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
गुरु षष्ठं च पादानां शेषेष्वनियमो मतः ॥) इसके सभी चरणों में पाँचवां अक्षर लघु होता है, दूसरे व चौथे चरणों में सातवाँ अक्षर लघु तथा छठा गुरु होता है। शेष वर्णों के लिए कोई नियम नहीं होता। इसमें अक्षर संख्या आठ होती है।

अस्त्यत्र भारते वर्षे
कोशलाविषयो महान्।
स्वच्छाप्सरः समाकीर्णः
स्वर्गलोक इवापरः ॥

हरिणी[३३]

(नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।)

इसके चारों चरणों में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण, लघु और गुरु वर्ण होते हैं। इसमें छः, चार और सात वर्णों पर यति होती है।

सुकृतवशतो भूत्वा देवौ महर्द्धिविभूषणौ
सुरगिरिशिरश्चैत्यावासेष्वनुष्टितवन्दनौ।
त्रिदशवनितावक्त्राम्भोजप्रगल्भमधुव्रतौ।
सुखमवसतां तस्मिन्नेतौ चिरं तु चिराकृती ॥६/९२॥

सप्तम सर्ग में ११३ श्लोक हैं जो स्वागता[३४], रथोद्धता[३५], मालिनी[३६] और शार्दूलविक्रीडित[३७] में निबद्ध है इसमें स्वागता सर्वाधिक प्रयुक्त छन्द है। नवीन छन्दों- स्वागता एवं मालिनी के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं:

स्वागता[३८]- (स्वागता रनभगैर्गुरुणा च) के सभी चरणों में रगण, नगण, भगण और दो गुरु वर्ण होते हैं।

पूर्वसूचितमनोज्ञजनान्ते
कौशलेति नगरी रमणीया।
हेमनाभ इति नाम नरेन्द्रः
शास्ति तां दिवमिवामरनाथः ।।७।१।।

मालिनी[३९]-

(ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः) प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण और यगण तथा आठ और सात अक्षरों में यति होती है।

इति नृपतिकरस्थो नारदस्तद्यथाव-
न्मदनसहजवृत्तं सर्वमेव निशम्य।
त्रिभुवनगुरुपादौ पूजयित्वातिभक्त्या
खचरनिलयमागाद्बालकालोकनाय ।।७/१११।।

अष्टम सर्ग में १९७ श्लोक हैं जो प्रमिताक्षरा[४०], वैश्वदेवी[४१], शालिनी[४२], वसंततिलक[४३], स्वागता[४४], रथोद्धता[४५], शार्दूलविक्रीडित[४६] और मालिनी[४७] छंदो में निबद्ध हैं। इसमें प्रमिताक्षरा छन्द का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। नूतन छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं -

प्रमिताक्षरा[४८]- (प्रमिताक्षरा स ज स सैः कथिता।) अर्थात् जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः सगण, जगण, सगण और सगण हों, उस छन्द को प्रमिताक्षरा छन्द कहते हैं।

अथ कालसम्बरखगेन्द्रगृहे
जननेत्रकैरवविकाशयिता।
जनयन्प्रमोदमधिकं जगतो
ववृद्धे स बालकविधुः शनकै : ।।८/१।।

वैश्वदेवी[४९]- (बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ) प्रत्येक चरण में दो मगण तथा दो यगण होते हैं, पाँचवें तथा सातवें वर्ण पर यति होती है।

वीरैः सद्योधैः पातिता योधमुख्याः
स्थूरीपृष्ठौघेः सादिनः सादिताश्च।
नागैर्नागेन्द्रा वीरभूपैश्च भूपाः
सर्वे खेटौघा मायया सम्प्रयुध्य ।।४/८६।।

शालिनी[50]- (मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः) सभी चरणों में क्रम से मगण, तगण, तगण और दो गुरु वर्ण होते हैं तथा इसके चार तथा सात अक्षरों में यति होती है।

विश्वं सैन्यं पातितं स्वं निरीक्ष्य
दुष्टारातिं दुर्जयन्तं पुरस्तात्।
विद्ये भार्यां याचितुं खेचरेन्द्र :
प्रज्ञप्त्याख्यां रोहिणीमप्ययासीत्॥

नवम सर्ग में ३४९ श्लोक हैं जो अनेक समवृत्तों, अर्द्धसमवृत्तों एवं विषमवृत्तों में निबद्ध हैं। प्रस्तुत सर्ग में सर्वाधिक प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रयुक्त छन्दों के नाम हैं - सुन्दरी[51] (अर्धसम), भद्रविराट[52] (अर्धसम), शुद्धविराट[53], स्वागता[54], रथोद्धता[55], द्रुतविलम्बित[56], मालिनी[57], हरिणी[58], मत्तमयूर[59], शार्दूलविक्रीडित[60], वसन्ततिलक[61], प्रमिताक्षरा[62], उपेन्द्रवज्रा[63], इन्द्रवज्रा[64], उपजाति,[65] वंशस्थ[66], कालभारिणी[67] (अर्धसम), दोधक[68], शालिनी[69], विद्युन्माला[70], चण्डी[71], नर्दटक[72], प्रहर्षिणी[73], पृथ्वी[74], भुजङ्गप्रयात[75], मन्दाक्रान्ता[76], तूणक[77], कामिनी[78], पद्म-(अर्धसम) निधियानन्दिनी[79], मालभारिणी[80] (अर्धसम)। प्रस्तुत सर्ग में प्रयुक्त नवीन छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार हैं -

सुन्दरी[81]- (अयुजोर्यदि सो जगौ युजोः, सभरा ल्गौ यदि सुन्दरी तदा।) इस विषम चरणों में दो सगण और जगण, एक गुरु वर्ण होता है तथा सम चरणों में सगण, भगण, रगण, लघु एवं गुरु वर्ण होते हैं, जैसे-

पितंर कनकस्रजान्वितं
मदनो द्वारवतीं व्रजन्पुरीम्।
प्रणिपत्य जगौ विमृष्यतां
ननु दुर्वृत्तमिदं शिशोर्मम ॥९/१॥

भद्रविराट्[82]- (ओजे तपरौ जरौ गुरुश्चेत्, म्सौ ज्गौ ग् भद्रविराट् भवेदनीजे।) जिस वृत्त के विषम चरणों में क्रम से तगण, जगण, रगण, गुरु वर्ण तथा सम चरणों में मगण, सगण, जगण तथा दो गुरु वर्ण हों, उसे भद्रविराट् वृत्त कहते हैं - जैसे

मातः क्रियतां च नः प्रसादो
दुष्कर्मोदयजातदुष्टबुद्धेः।
को वा परतन्त्रकेषु कोपं
धीमान्न कुरुते जनाग्रभूतः ॥९/२॥

शुद्धविराट्[83]- (म्सौ ज्यौ शुद्धविराडिदं मतम्) अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण और गुरु वर्ण होते हैं।

स्वभ्रातृन्पितरं स्वमातरं

पौनः पुण्यमतीव सादरम् ।

स स्नेहमतिः प्रणम्य तान्

तद्देशाच्चलितः सनारदः ॥९/३॥

मत्तमयूर[८४]- (वेदै रन्ध्रैम्तौ यसगा मत्तमयूरम् ।) इसके चारों चरणों में मगण, तगण, यगण, सगण और एक गुरु वर्ण तथा चार और नौ अक्षरों में यति होती है-

उत्फुल्लास्यं व्याततपक्षं कृतकेकं

नृत्यासक्तं मन्थरपादं वनगुञ्जे ।

गुञ्जन्मत्तैर्भृङ्गसमूहैः कृतगीतैः

पश्योत्कंठ मत्तमयूरं मदनेमम् ॥९/२७॥

कालभारिणी[८५]- (विषमे ससजा यदा गुरू चेत्, सभरा येन तु कालभारिणीयम्) विषम चरणों में क्रमशः सगण, सगण, जगण और दो गुरु वर्ण तथा सम चरणों में सगण, भगण, रगण और यगण होते हैं ।

इति वाचमतीव गर्वसारां

हरिसूनुः प्रमदावहां निशम्य ।

निजभृत्यजनान् जगाद शक्ता-

निममारोपयतेति कौतुकेन ॥९/१०८॥

दोधक[८६]- (दोधकमिच्छति भत्रितयाद् गौ) इसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं- जैसे :

कोपवशादभिपात्य समस्तं

भूरुहवृन्दमसंवृतगात्रः ।

त्रोटितचारुलतानिकरोस्मा-

त्प्राप पुरीं पुरुषोत्तमसूनुः ॥९/१३७॥

विद्युन्माला[८७]- (मो मो गो गो विद्युन्माला ।) के चारों चरणों में क्रमशः दो मगण और दो गुरु वर्ण होते हैं । इस प्रकार इसमें आठों वर्ण गुरु होते हैं -

पुत्र्यो दत्त स्नातुं मह्यं

वाप्यां नीरं शान्त्यर्थं च ।

कस्याप्येतद्दत्तं येन

भोक्तुं पुर्यां पाप्नोम्यस्याम् ॥९/१५०॥

चण्डी[८८]- (नयुगलसयुगलगैरिति चण्डी ।) चारों चरणों में क्रमशः नगण, नगण, सगण, सगण, और एक गुरु वर्ण होता है-

कुरु पृथुकुचजघनस्थलरम्याः

श्रवणनयनवचनामृतयुक्ता : ।

द्विजवर निरुपम नो द्रुतमनय-

प्रणति विनतशिरसो वयमपि ते ॥९/१६३॥

तूणक[९] - (तूणकं समानिकापदद्वयं विनाऽन्तिमम् ।) द्विगुणित समानिका वृत्त के प्रत्येक चरण में से अन्तिम अक्षर घटा देने पर यह छन्द होता है ।

समानिका[१०] - (ग्तौ रजौ समानिका तु) इस प्रकार तूणक नामक छन्द में क्रम से गुरु, लघु, रगण, जगण, गुरु लघु, रगण, लघु और गुरु, वर्ण होते है ।

भृंगसन्निभौश्चिता: कचैर्बभूवुरंगना:

काञ्चनायताक्षिका वरांगिका क्षणेन ता:

कर्णपूरपूरिता: परा: कुचानतांगिका

मन्मथेन निर्मितास्सुशर्मलम्भबुद्धय: ॥९/१६५॥

नर्दटक[११] - (यदि भवतौ नजौ भजजला गुरु नर्दटकम्) इसके प्रत्येक चरण में नगण, जगण, भगण, जगण, जगण, लघु और गुरु वर्ण होते हैं ।

सुरपतिनीलरत्नचयसन्निभकेशभरं

जलचरनाभिकंठमरुणाधरपाणिपदम् ।

विकसित कुन्ददन्तमतिदीप्तिधरं वपुषा

समभिनिरीक्ष्य तोषमगमन्मदनो मनसा ॥९/१८१॥

भजुङ्गप्रयात[१२] - (भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारै: ।) इसके चारों चरणों में चांर यगण होते हैं ।

अहो छद्मिता वै वयं विप्रकेण

विगुप्ताश्च सर्वं हतं चापि तोयम् ।

खलेनात्र कुर्मो वयं किं वराक्य:

स्फुटं चेति वाठू रुषां ताम्रनेत्रा: ॥९/१६६॥

मन्दाक्रान्ता[१३] - (मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्) इसके चारों चरणों में क्रमश: मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु वर्ण होते हैं । इसमें चार, छ: और सात वर्णों पर यति होती है जैसे-

यस्यां मत्तभ्रमरमुखरा: पादपा नित्यरम्या:

पद्मिन्योपि प्रतिदिशमतं पुष्पमालाभिरामा: ।

वाप्य: प्रायो मरकतशिलाबद्धभित्तिप्रदेशा: ।

स्वर्गी स्वर्गं त्यजति बहुधा वीक्ष्यं यस्याश्च लक्ष्मीम् ॥९/८९॥

पद्मनिधि या नन्दिनी[१४] - जिस वृत्त के प्रथम एवं तृतीय चरणों में क्रमश: तगण, तगण, जगण एवं रगण हो तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में क्रमश: जगण, तगण,

जगण एवं रगण हो, उसे पद्मनिधि या नन्दिनी वृत्त कहते हैं ।

एवं करोम्यार्य ससंभ्रमो द्रुतं
समारुरोहाश्वमतीव चञ्चलम् ।
अश्वोपि बभ्राम तथातिवेगतो
ऽनुरञ्जयामास यथास्य मानसम् ।।९/९८।।

मालभारिणी[९५]- (साज्गगाः स्भर्या मालभारिणी । ओजे ससजगगाः । समे सभरयाः ।) इस वृत्त के विषम चरणों में क्रमशः सगण, सगण, जगण और दो गुरु वर्ण तथा सम चरणों में क्रमशः सगण, भगण, रगण और यगण होते हैं ।

न हि वाहयितुं ममास्ति शक्ति-
र्भवतस्तेन तुरङ्गमर्पयामि ।
अथवा धृतबाहुकं प्रयत्नात्
यदि मां रोपयितुं क्षमाः समस्ताः+ ।।९/१०६।।

कामिनी[९६] - (रज्राः कामिनी ।) इस वृत्त के प्रत्येक चरण में क्रमशः रगण, जगण एवं रगण होते हैं ।

हारिचक्रवाकसुस्तनी
हंसवृन्दचारुगामिनी ।
अंगनेव बल्लभा नृणां
भट्ट दुर्लभा हि पापिनाम् ।। ९/५२।।

दशम सर्ग में ८६ श्लोक हैं जो शालिनी[९७], वसन्ततिलक[९८], अनुष्टुप्[९९], प्रमिताक्षरा[१००], द्रुतविलम्बित[१०१], मालिनी[१०२], स्वागता[१०३], उपेन्द्रवज्रा[१०४] एवं शार्दूलविक्रीडित[१०५] छंदों में निबद्ध हैं । इनमें शालिनी छन्द का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है । **एकादश सर्ग** में १०३ श्लोक हैं । इस सर्ग के सभी श्लोक द्रुतविलम्बित छन्द में प्रणीत हैं । **द्वादश प्रभ्नैर्याणां** में ६४ श्लोक हैं जो अनुष्टुप्[१०६], मन्दाक्रान्ता[१०७] एवं स्त्रग्धरा[१०८] में निबद्ध हैं । स्त्रग्धरा[१०९] का लक्षण इस प्रकार है- प्रम्नैर्याणां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्रग्धरा कीर्तितेयम् ।)

इसके चारों चरणों में क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण और तीन-तीन यगण होते हैं । इसमें सात, सात, वर्णों पर यति होती है ।

दोषाघातीद्धदीप्तिर्विमलगुणनिधिबोधयन्पद्मखण्डान्
पुण्यो धाम्नां निधानं हतपरमहिमा वंद्यपादो जनौघैः ।
श्रीमानस्तार्थमोहस्त्रिभुवनभवने दीप्रदीपोपि भानु-
र्भीतो दाहादिवोच्चैरुदयगिरिशिरो मन्दमागत्य तस्थौ ।।१२/६४।।

त्रयोदश सर्ग में ४४ श्लोक हैं जिनमें दो छन्द प्रयुक्त हुए हैं - वसन्ततिलक[११०] और शार्दूलविक्रीडित[१११]।

चतुर्दश सर्ग में ६६ श्लोक हैं जो वंशस्थ[११२] स्रग्धरा[११३], एवं शार्दूलविक्रीडित[११४] में रचित हैं।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट होता कि प्रद्युम्नचरित में महासेन ने अवसरानुकूल विविध छन्दों का प्रयोग किया है।

सन्दर्भ

१. उपजाति - श्लोक संख्या - १, २, ४, ६,१०, ११, १४, १७, १८, १९, २०, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३८, ४०, ४१, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४९,
२. इन्द्रवज्रा - ५, ७, ९, १२, १३, १५, १६, २१, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३७, ३९
३. उपेन्द्रवज्रा - ३, ८, ४२
४. वसन्ततिलक - ५०
५. शार्दूलविक्रीडित -५१
६. छन्दोमञ्जरी, गङ्गादास चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, पृ० ३५,
७. वही, पृ० ३३
८. वही, पृ० ३४
९. वही, पृ० ६५
१०. वही, पृ० ६५
११. वंशस्थ - १-७३
१२. द्रुतविलम्बित - श्लोक सं० - ७४
१३. वसन्ततिलक -७५
१४. छन्दोमञ्जरी पूर्वोक्त पृ० ४६
१५. वही, पृ०, ५१
१६. रथोद्धता -१-७३
१७. इन्द्रवज्रा - ७४
१८. वसन्ततिलक -७५
१९. शार्दूलविक्रीडित - ७६
२०. प्रहर्षिणी - ७७

२१. छन्दोमञ्जरी-पृ० ४१
२२. वही, पृ०- ५७
२३. द्रुतविलम्बित -१-६०,६२
३४. पृथ्वी - ६३, ६४
२५. वसन्ततिलक - ६५
२६. छन्दोमञ्जरी, पृ० ८५
२७. वसन्ततिलक - १-१४९
२८. शार्दूलविक्रीडित - १५०
२९. अनुष्टुप् - १-९०
३०. उपजाति - ९१
३१. हरिणी - ९२
३२. छन्दोमञ्जरी, पृ०२४
३३. वही, पृ० - ८८
३४. स्वागता सं० १-१०९
३५. रथोद्धता - ११०
३६. मालिनी - १११
३७. शार्दूलविक्रीडित - ११२,११३
३८. छन्दोमञ्जरी, पृ० ४२
३९. वही, पृ०- ७२
४०. प्रमिताक्षरा - १-१८५
४१. वैश्वदेवी - १८६, १९०,१९२
४२. शालिनी - १८७
४३. वसन्ततिलक - १८८,१९१
४४. स्वागता - १८९,१९३,१९६
४५. रथोद्धता - १९४
४६. शार्दूलविक्रीडित - १९५
४७. मालिनी - १९७
४८. छन्दोमञ्जरी - पृ०, ५१
४९. पृ० - पृ०, ५०
५०. छन्दोमञ्जरी पृ० ३८
५१. सुन्दरी - श्लोक सं० १, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १०१, १०२
५२. भद्रविराट् -२

५३. शुद्धविराट् - ३
५४. स्वागता - ११, १२, १३, १६, २०, ४०, ४१, ८३, ९२, ९३, १०९-११५, १५४-१६२, १६८, १७७, १७८, १८६
५५. रथोद्धता - १४, १५, १७, १८, १९, २१, २२, ३५, ४३, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७८, ११६-१२७
५६. द्रुतविलम्बित - २३, २४, ३१, ३२, ३३, ३४, ४४-७१, ७७, ८१, ८२, ८४, १६४
५७. मालिनी - २५
५८. हरिणी - २६
५९. मत्तमयुर - २७, १२८-१३६
६०. शार्दूलविक्रीडित - २८, ९१, ९६, २१७, २१८, २१९ .. ..
६१. वसन्ततिलक - २९, ३६, ३७, ८६, ८७, ८८, ९४, ९५, ९७, ९९, १६९-१७५, १८०, १८२, १८३, १८९-२०३
६६. वंशस्थ - १००
६७. कालभारिणी - १०८
६८. दोधक - १३७-१४७, १५३
६९. शालिनी - १४८, १४९, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९
७०. विद्युन्माला - १५०-१५१
७१. चण्डी - १६३
७२. नर्दटक - १८१
७३. प्रहर्षिणी - १८४, १८५, २०४, २०५, २०६, २०७
७४. पृथ्वी - १८८
७५. भुजङ्गप्रयात - १६६, १६७, २०९-२१६
७६. मन्दाक्रान्ता - ८९
७७. तूणक - १६५
७८. कामिनी - १५२
७९. पद्मनिधि या नन्दिनी - ९८
८०. मालभारिणी - १०६
८१. छन्दोमञ्जरी- पृ० -१२९
८२. वही, पृ०- १३०
८३. वही, पृ०- ३३
८४. वही, पृ० सं० -५८

८५. वही, पृ० -१३०
८६. वही, पृ० -४२
८७. वही, पृ० -२५
८८. वही, पृ० -५९
८९. वही, पृ० -७४
९०. वही, पृ० -२७
९१. वही, पृ० -८९
९२. वही, पृ० -४८
९३. वही, पृ० -८७
९५. आचार्य हेमचन्द्रसूरि - विरचित छन्दोऽनुशासन, सिंघी जैन ग्रंथमाला ग्रन्थाङ्क ४९, - सम्पा० - एच. डी. वेलणकर, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, H .३.१७. पृ० १०३ ।
९६. छन्दोऽनुशासन - प्रोक्त, H.२ १०६ पृ० २६
९७. शालिनी-श्लोक सं० १-२८
९८ वसन्ततिलक - २९, ३०, ४४, ६०, ६१, ६२, ६३, ७१
९९. अनुष्टुप् - ३१-४३
१००. प्रमिताक्षरा - ७२
१०१. द्रुतविलम्बित - ४५, ६६, ७९, ८०
१०२. मालिनी - ४६, ४७, ५०-५८, ६४, ६५, ६७, ६८, ६९, ७३-७८, ८२, ८४
१०३. स्वागता - ४८,४९
१०४. उपेन्द्रवज्रा - ५९, ८३
१०५. शार्दूलविक्रीडित - ७०, ८५, ८६
१०६. अनुष्टुप् -१-५, ७-१२, ३६-४५, ४७-६३,
१०७. मन्दाक्रान्ता - १३-३५
१०८. स्रग्धरा - ६४
१०९. छन्दोमञ्जरी - प्रोक्त, पृ०- १०८
११०. वसन्ततिलक - १-४३
१११. शार्दूलविक्रीडित - ४४
११२. वंशस्थ - १-४२
११३. स्रग्धरा - ४३-५९, ६१, ६२, ६३, ६५.
११४. शार्दूलविक्रीडित -६४,६६
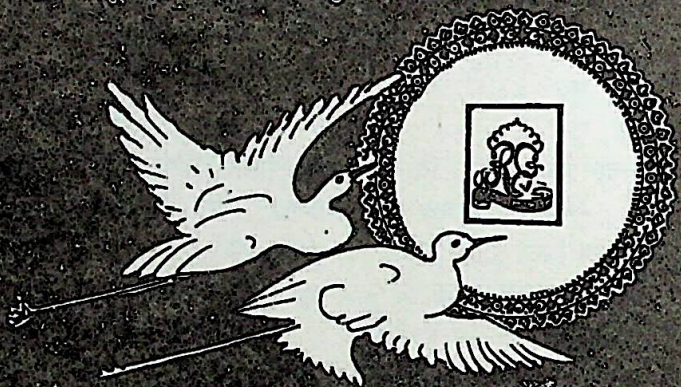
❖

हम समाज को जोड़ेंगे, हमने यह व्रत धारा है,
जैन एकता और समन्वय, यही हमारा नारा है।

"दृष्टांत उपदेश से अधिक कीमती होता है।"
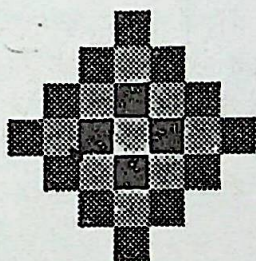
जैनों में साध्वी प्रतिमा की प्रतिष्ठा, पूजा व वन्दन
इतिहास व प्रामाणिकता के संदर्भ में

महेन्द्र कुमार जैन 'मस्त'

विजय वल्लभ स्मारक दिल्ली के प्रांगण में अभी कुछ मास पूर्व ही पूज्य महत्तरा साध्वी मृगावती श्री जी की भव्य प्रतिमा को शास्त्रीय विधि-विधान तथा धूमधाम से प्रतिष्ठापित किया गया है। पूरे भारत से जैनों की गणमान्य संस्थाओं के प्रतिनिधि-प्रमुख तथा श्रावक भाई-बहन जो तीन दिन के इस समारोह में पधारे थे, वे सभी हार्दिक अभिनंदन व बधाई के पात्र हैं। प्रतिमा स्थापना के दृश्यों के जो चित्र उस समारोह में जीवंत संजोये गए, वे भावी पीढ़ियों के लिए बहुमूल्य विरासत बने रहेंगे।

जैन भारती महत्तरा साध्वी मृगावती श्री जी महाराज, जिन्हें कांगडा तीर्थ-उद्धारिका, लहरा गुरुधाम तीर्थ की स्रष्टा , जैन कालेज अंबाला की जीवनदात्री तथा विजय बल्लभ स्मारक की आदि प्रणेता जैसे सार्थक विशेषणों से भी याद किया जाता है, इस युग की महान साध्वी थीं। १८ जुलाई १९८६ को इसी स्मारक पर ही वे देवलोक सिधारी थीं।

इतिहास में साध्वी प्रतिमा

भारत के इस भाग में प्रतिष्ठापित की जाने वाली तपागच्छीय परम्परा की यह सर्वप्रथम साध्वी प्रतिमा है। यहां से आगे श्री नाकोड़ा तीर्थ पर दक्षिणवर्ती मंदिर में साध्वी सज्जनश्री जी के प्रतिमा की दर्शन होते हैं। दिल्ली के दादावाड़ी (महरौली) मंदिर में भी साध्वी-रत्न पूज्य विचक्षण श्री जी महाराज की ऐसी ही प्रतिमा है। जैन परम्परा में साध्वी जी की प्रतिमा को बनाना, प्रतिष्ठापित कराना व पूजना कोई नई बात नहीं है। करीब ९०० या १००० वर्ष पहले की प्रतिष्ठित साध्वी प्रतिमाएं अभी भी कई तीर्थों-मंदिरों में मिलती हैं। महान साध्वियों की अनुपम उपलब्धियों के प्रति यह कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है।

४० वर्ष पहले बंबई से एक महाग्रंथ - "वल्लभ स्मारक ग्रंथ" प्रकाशित हुआ था। मुनिराज आगम-प्रभाकर श्री पुण्यविजय जी, डॉ. साण्डेसरा तथा प्रो. पृथ्वीराज जी ने इस ग्रंथ का संपादन किया था। इसी में एक लेख आचार्य यशोदेवविजयजी

(तत्कालीन मुनि यशोविजयजी) का भी है। अपने इस गुजराती लेख - "प्राचीन समय में जैन साध्वियों की प्रतिमाओं" में इन्होंने वि० सं० १२०४ से १२९६ (ई०सं०११४७

से १२३९) तक की जैन साध्वियों की तीन प्रतिमाओं का चित्रों सहित पूरा विवेचन किया है। खेड़ा जिले के (बड़ौदा के पास) मातर तीर्थ में विराजित और पाटन के अष्टापद मंदिर में विराजित साध्वी-प्रतिमा के लेख व चित्र दिये हैं। ये सभी मूर्तियाँ बारहवीं शताब्दी की हैं। साध्वी-प्रतिमा का प्रचलन इससे पहले भी अवश्य रहा होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

आचार्य यशोदेवविजयजी ने तो और भी स्पष्ट लिखा है कि "साध्वी-प्रतिमा की प्रतिष्ठा का विधान १५वीं शताब्दी में रचित "आचार दिनकर" के तेरहवें अधिकार में सविधि व सविस्तार उल्लिखित मिलता है।

साध्वी प्रतिमा की लंबी परम्परा में दो अन्य प्रतिमाएं भी महत्त्वपूर्ण हैं। राजगृह (बिहार) नगर के मुख्य श्वेताम्बर मंदिर में मूलनायक प्रभु के वामवर्ती एक मध्य-युगीन तीर्थंकर प्रतिमा विराजमान है। उसमें प्रभु के पद्मासन के नीचे के भाग में, मूर्ति में ही सन्निहित एक साध्वी की प्रतिमा बनी हुई है। इसी तरह चित्तौड़ के किले में महान आचार्य श्री हरिभद्रसूरि महाराज के समाधि-मंदिर में उनकी ६१ इंच की जो मूर्ति है, उसमें उनके मस्तक के पास ही महत्तरा साध्वी याकिनी की दर्शनीय मूर्ति बनी हुई है।

साध्वी वंदन

स्मारक के इसी समारोह में, प्रतिष्ठा के तुरंत बाद हुई धर्म सभा में मंच तथा पंडाल में बैठे हुए सभी ने पूज्य साध्वीं सुब्रता श्री जी महाराज को, वंदन सहित खड़े होकर, काँबली स्वीकार करने की जब सादर विनती की तो कितने ही लोगों के भावाश्रु
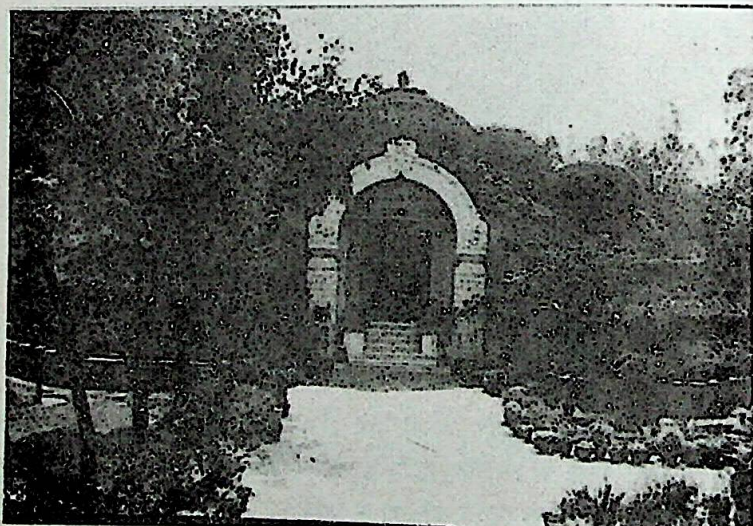
छलक पड़े थे। खड़े होने वालों में आदरणीय सेठ श्रेणिक भाई, श्री प्रताप भोगीलाल भाई, श्रद्धेय गार्डी जी, समाजरत्नद्वय श्री जे.आर. शाह व राजकुमार जैन, श्री शैलेश भाई, श्री मुलखराज जैन, जस्टिस बछावत तथा श्री सुन्दर लाल पटवा आदि गणमान्य शामिल थे। कई वर्ष पहले, एक बार स्वनामधन्य स्व. सेठ कस्तूरभाई लालभाई, महत्तरा साध्वी मृगावतीश्री के दर्शन करने बैंगलोर के उपाश्रय में आये तो ऊपर की मंजिल पर विराजमान साध्वी श्री जी को कहलवाया कि मैं सिढ़ियां नहीं चढ़ सकता। आप श्री कृपया नीचे पधारें। मुझे वंदना करनी है। सेठश्री जी के भावों की महानता स्तुत्य है।

स्वयं मुझे (लेखक को) अहमदाबाद में मेरी एक आत्मीय गुजराती बहन वहां एक विद्वान् साध्वी जी के दर्शनार्थ ले गयी। मैंने तीन खमासमण सहित वंदन किया और सुखसाता के बाद आधा घण्टा बातें की। चलने लगा तो पू. साध्वी जी ने कहा कि भाई

महेन्द्र कुमार, श्रावक लोग जब साध्वी जी के पास आते हैं तो "मथेणवंदामि" कह कर बैठ जाते हैं और तीन खमासमण देकर केवल बहनें ही वंदना करती हैं। बात सुन कर मुझे कुछ झेंप आयी, पर मैने तुरन्त विनती की कि महाराज जी, जिस जैन दर्शन की महानता ने मल्लि कुमारी को तीर्थंकर माना, वसुमति को चन्दनबाला बनाया और जहां स्त्री-मुक्ति को मान्य कहा गया, वहीं महातपस्वी श्री बाहुबलीजी को भी साध्वियों ने ही प्रतिबोधित किया था। फिर भी बहुत विनम्रता से दो बातें कहना चाहता हूं। पहली तो यह कि हम लोग पंजाब केसरी आचार्य विजय वल्लभसूरिजी के अनुयायी हैं, जिन्होंने साध्वी को पाट पर बैठने व सूत्र वाचने तथा मुनि भगवंत व श्रावकों की सभा में बोलने की आज्ञा दी थी और दूसरा पक्ष यह है कि यदि णमो लोए सव्व साहूणं में "साध्वी" का समावेश भी है तब तो मेरी वंदना ठीक है और अगर उसमें यह समावेश नहीं है, तो मेरी वंदना वापस। झट से उन्होंने उत्तर दिया कि उस पद में यह समावेश तो बराबर है।

साध्वी की महानता और श्रावकों द्वारा वंदन करना, प्रभु महावीर की आज्ञा का ही पालन है। यह साध्वी के साधुत्व की महानता ही थी कि आचार्य हरिभद्रसूरि जी अपने को महत्तरा याकिनी सूनु का पुत्र कहते व लिखते रहे।

ŚRAMAṆA

Third Monthly Research Journal of Pārśvanātha Vidyāpīṭha

Volume 48 **No.7-9** **July-September, 1997**

General Editor

Prof. Sagarmal Jain

Editors

Dr. Ashok Kumar Singh

Dr. Shriprakash Pandey

For Publishing Articles, News, Advertisement and Membership, contact

General Editor

Śramaṇa

Pārśvanāṭha Vidyāpīṭha

I. T. I. Road, Karaundi

P. O. : B. H. U

Varanasi - 221 005

Phone : 316521, 318046

Annual Subscription

For Instituitions : Rs. 60.00

For Individual : 50.00

Single Issue : 15.00

Life Membership

For Instituitions : Rs. 1000.00

For Individual : Rs. 500.00

Nirgrantha Doctrine of Karma - A historical perspective (with special reference to Bhagavatī).

Dr. Ashok Kumar Singh

This research paper is an extension to my earlier paper, *"Prācīna Jaina Granthŏ mĕ Karma Siddhānta kā Vikāsakrama,*[1] dealing with *Ācārānga, Sūtrakṛtānga, Ṛṣibhāṣita, Uttarādhyayana, Sthānānga and Samavāyānga*, positively, the earliest of the extant Jaina cononical texts. After these texts comes *Vyākhyāprajñapti* - the fifth of the *Aṅga* texts, also known as Bhagavatī.

Bhagavatī, in its present form, is divided into 41 *śatakas*. Barring *śataka* XV all the other *śatakas* are sub-divided into *uddeśakas*. The total number of *śatakas* including the sub-*satakas* is 138 and that of *Uddeśakas* is 1925.

Karma doctrine is one of the most important phenomenon of all the systems of Indian thought. With the only exception of Cārvākan, all the schools of Indian philosophy deal with *Karma* doctrine. Infact, the doctrine of *karma* was evolved to answer the cause of continuity of this world, with all its visible vividity and multiplicity. Various thinkers have thought over the immediate cause of the universe, commencing from *Kāla* (time) and ending with *Puruṣa* (Hiraṇyagarbha). *Śvetāśvatara Upaniṣad*[2] mentions- "*Kāla* or *Svabhāva* (nature), *Niyati* (the settled course) or *Yadṛcchā* (chance) or *Bhūtāni* (elements) or *Yoni* (Prakṛti) or *Puruṣa* as the cause. Again, according to it any combination of these causes, in whichever, manner combined, does not deserve to be treated as the cause." The above views, however, could not wholly ascertain the truth. The limitations of the causes, separately as well as combined, paved the way for the evolution of *Karma* doctrine, which maintained that individual dissimilarities, feeling of pleasure and pain, innate

Sr. Lecturer. Parshvanath Vidyapeeth,

virtuous and vicious inclinations, seen in this world, owe their existence to the previous *Karman.*

The account of *karman* is most systematically elaborated with its minutest details in Jaina tradition. Padmabhūṣaṇa Pt. Dalsukha Malvaniā[3], one of the great savant of *Śramanic* tradition, has well remarked, "Detail account of Karma doctrine as envisaged by Jainas is parallel to none [21]".

The main features of the Nirgrantha Karma doctrine of Jainas may be put, in nutshell, as follows-

It has material form, eight *Mūlaprakṛtis* (fudamental species)viz. *Jñānāvaraṇīya* (knowledge-obscuring).[3], *Darśanāvaraṇīya* (conation obscuring), *Vedanīya* (feeling producing), *Mohanīya* (Deluding)[5], *Āyuṣya* (Age-determining), *Nāmakarma* (physique making), *Gotra* (Status-determining) and *Antarāya* (obstructive) karman. Each of *mūlaprakṛtis* has been further divided into *Uttara Karmaprakṛtis* (sub-spcies). *Jñānāvaraṇīya* has five, *Darśanāvaraṇiya*-nine. *Vedanīya*-two, *Mohanīya*-28, *Āyuṣya*-four, *Nāma*-103, *Gotra*-2 and *Antarāya*-5.

Karmaprakṛtis are classified into *ghāti* and *aghāti* group. *Ghāti* has two catergories. First *Sarvaghāti* karman completely destroying the qualities peculair to the soul, second *Deśaghāti* - karman destroying the soul qualities in a greater or lesser measure. *Aghāti* means karman - destroying no property of the soul. Sub-species of karman are also designated as *Puṇya* (virtuous) and *Pāpa* (sinfiul).

Again the atoms, which have turned into *Karma* are contemplated from four points of views.- according to the manner of their effect, (2) the duration of their effect, (3) Intensity of their effect, and (4) according to their number of *pradeśas.* The inter-relation of *Uttarakarmaprakṛtis* has also been dealt in according to *Bandha, Sattā* and *Udai.*

Five causes of bondage of karman are *Mithyātva* (Perversity), *Avirati* (non-abstinence), Pramāda (non-vigilence), *Kaṣāya* (passion) and *Yoga* (activity). There are ten different states of *Karma* - bondage in Nirgrantha doctrine of *Karma* namely *Bandha* (bondage), *Sattā* (existence), *Udvartanā* (delayed fruition), *Apavartanā* (decreased realisation), *Saṁkramaṇa* (alteration), *Udai*-(realisation), *Udīraṇā*

samitis (carefulness), ten *dharmas* (duties), twelve *Anuprekṣas* (reflections), twenty two *pariṣahas* (the patient endurance) and five degrees of *cāritra* (conduct).

The annihilation of Karman is attained by six external austerities and six internal austerities. However, the means of suppression of *Karma*, refered to above are not directly related with the *karma* doctrine, hence absent in *Karmagranthas.*

Karmavipāka (fruition of *Karmas*), *Karma* bondage, *Karma* and Guṇasthāna (stages of spiritual development), *Karma* and *marganā sthāna* (stand points of investigation) are also dealt, herein.

In addition, some important problems of Jaina karma doctrine such as whether fruits of *karmas* are subject to God ? What is the time of fruition of *karmas*, are also dealt in here. It also contains detailed discussion on some problems, regarding relationship between soul and *karma.*, such as which is prior-soul or *karma*, which is more powerful soul or *karma.*

Needless to mention that whole of the above Nirgrantha karma doctrine was not propounded within a spur of moment. As usual it is the outcome of the process of gradual evolution. Therefore, an attempt to present the literary account, depicting the evolution of the Nirgrantha doctrine in a historical perspective, is in order.

Before coming to the doctrine of *karma* as depicted in *Bhgavatī*, a glimpse of main features of karma doctrine as mentioned in *Ācārāṅga* etc. is necessary. The facts of the above texts have been shown by the table.[4]

1 The text	2 Nature of Karman	3 Basic Principles	4 Fund-ental Species	5 Sub-types of fund.	6 Ghā-ti etc	7 Virtuous/ sinful	8 Nature of Karma Bondage	9 Causes of Karma Bondage	10 Different stages of karma
Ācārā-ṅga	Material form (Karma Sarīra ~ psychic form (Akarma)	Destruction of karma is possible (Dhuṇe kamma-Sarīragaṁ)/ karma root of world cycle	-	-	-	-	Indirect ref. to passionless influx (Akarma)	Delusion, Violence, Attachment & hatred, Influx is afflux	-
Sūtra-kṛtāṅga	Material form (Karmaraja) Psychic form (Vigilance is not karma	Enjoymet of self karma is essential, fruits as per karma, enjoyment of self karma and not of others.	Conati on obscuri -ng	-	-	Puṇya-Pāpa	Passional infl-ux(samparāya) Passionless influx	Possession or Attachment, four passions, killing of living beings, Untruth, Non-stealing, abstaining from coupulation	Udai (Realisation), Udīraṇā (Premature fruitioṅ)
Ṛṣibhāṣ-ita	Karma-Akarma	Enjoyment of auspicious self karmas, karma follows the doer.	Eight karma-knots	-	-	Auspi-cious Inauspi-cious	-	Mithyātva (Perversity Avirati- Non-abstinece Prāmadaon vigilence, Kaṣāya (passion) andiyoga (activity)	Sopādāna Nirādāna, Upakramit Utkārīta, Bandha, Niddhatta

Uttarād-hyayana	Material form	-	Jñānāvaraṇiya etc. Eight	Jñāṅa 25. Darśanāv-9 Vedaniya-2 Mohaniya28 Āyuṣya-4 Nāmakarma- 2, Gotra-2, Antarāya-5	Ghāti Agh-āti	Auspi-cious Inauspi-cious	-	-	
Sthānā-nga	-	-	Jñānāvaranīya etc. Eight	Two different Descriptions (1) Jnāna-two (2) Darś-two (3) Ved-two (4) Moha-two (5) Āyuṣya two (6) Nama-two 7) Gotra-two (8) Antarāya - two	-	-	Sāmparāyika Iryāpathika, Preya and dveṣa	Mithyātva etc	Upacaya, Bandha, Udīranā
Samāvā-yanga				Mohanīya-28 Nāma-42	-	-	-	-	-

It shows that *Mūlaprakṛtis* are totally absent in *Ācārānga* . *Sūtrakṛtānga* mentions only one *Darśanāvaraṇa*. *Ṛṣibhāṣita* refers to the concept of eight *karmagranthis* for the first time but without divulging their names. Eight types of *karma prakṛtis* with their names have made maiden appearence in *Uttarādhyayana's* chapter[30], allegedly an interpolation, yet dating prior to the 1st century A.D.

Uttaraprakṛtis (sub-types) occur for the first time in *Uttarādhyayana*, but that of 103 types of *Nāmakarma* were absent till *Samavāyānga*. *Uttarādhyayana* mentions *Ghātī* and *Aghāti karmaprakṛtis*, while the present concept of five causes of karma bondage occur in *Ṛṣibhāṣita*. The divison of *karma* into *Iryāpathika* (passionless influx) and *Sāmparāyika* (passional influx) is found in *Sūtrakṛtānga*. All the ten states of *Karma* bondage are not seen till *Samavāyānga*. However, some of them are mentioned in these texts. It is in above perspective that the account of *Bhagavatī* may be seen.

The doctrine of *karma*, as found in *Bhagavatī* may be discussed under the following heads.(1) References to other (later) canons. (2) Different states of *karma* bondage. (3) Basic principles of Jaina *karma* doctrine. (4) Refutation of other's or heretic postulates pertaining to *karma* doctrine, (5) Activities of daily routine, made subject to *karma* bondage.

The inerpolations in the texts imply that all the subject - matter is exactly not of one and the same period. Thus, to claim that all the facts of a particular texts belong to the same period is not easy.

In *Bhagavatī*, at a number of places, it has been suggested either explicitly by means of *Jaha* or implicitly that particular discussion of certain topic may be taken or answered, as in other (referred) texts. The canonical texts referred to in *Vyākhyāprajuapti* are *Prajñāpanā*, *Jīvābhigama*, *Jambūdvīpaprajñapti*, *Samavāyānga*, *Aupapātika*, *Anuyogadvāra* and *Nandī*, (order of texts given here is according to the frequency of reference). Out of these seven, the first three are frequently referred.

Incidently, almost all explicit instances pertaining to *karma* doctine, occurred in *Bhagavatī*, referred to *Prajñāpanā* viz.[5] *Karma*

Prakṛti, *karmabandha*, *Karmasthiti* and *Karmaveda* except one in *Anuyogadavāra*.[6]

In *Bhagavatī* all the ten terms denoting the different states of *Karman* namely *Bandha*, *Sattā*, *Udai*, *Udīraṇā*, *Upaśama*, *Nidhatti*, *Nikācanā*, and *Saṁkramaṇa* are found. In addition, *Calana* (moving), *Prahāṇa* (decreasing), *Chedana* (cutting), *Bhedana* (breaking), *Dagdha* (burning), *Yathākarma*, *Yathānikarma*, as per *karma* acquired, as per time, place, states and causes determining outcome are seen. Thus for the first time in *Bhagavatī*, the complete description regarding different states of *karma* is found.

The *sūtras*, explaining the basic tenets of Nirgrantha karma doctrine, occurred in Bhagavatī, are in a good number. Some of them are as follows-

The living beings experience the fruits of self-created misery.[7] All the four types of beings, who have performed sinful acts, are not liberated without experiencing their effects.[8] The suffering of all the souls is made and perceived by their ownselves.[9] The souls are reborn on the strength of their own *Karmas*.[10] The actions of living beings are always experienced by the mind.[11] The single being and indeed the entire (animate world) acquires its diversity as a result of *karman*.[12] All the beings acquire a certain *āyu* without being aware of it.[13] The soul, who has already bound karman may or may not again bind bad karman in present and future,[14] The state of one who is free from Karman must be conceived as a state of being unconnected, undefiled and of distinct condition going undisturbedly to the target i.e. attaining Siddhahood at *Siddhasthāna*.[15]

In *Bhagavatī*, Mahāvīra is also seen as refuting the postulates of other systems related to karma. doctrine.[16] The heretics maintain that those, killed in wars reborn among the gods. Refuting it Mahāvīra cites a few examples of wars with the number of killed therein and the name of their existences in the next world. For example, in *Rathamūsala Saṁgrāma* (War of the chariot with the mace,) out of the 9,600,000 men killed, 10,000 were reborn as the roe of a fish, one was reborn among the gods, one in a good family, the others among hellish and

animals.

The contention of heretics is that living being at the same instant acquires *karma*, determining two life spans-the span of this life and that of the next. Against this Lord maintains[18] that a living being acquires *karma*, determining one life-span only, may be of this or of the next.

Against the postulates of others that a living being performs two activities at the same time, which are activity due to movement and that due to passions, Lord Mahāvīra[18] preaches that a living person at one time performs only one activity.

A living being experiences, at anyone time. one life-span- may be life span of this birth or of the next.[19]

Also against the postulate of heretics that the perception (*Vedanā*), of all the four types of beings, always corresponds with the actions performed, Nirgrantha doctrine maintains[20] that beings may or may not correspond.

Jainas also refute the contention of the heretics that all beings only experience suffering. According to Mahāvīra,[21] some of the beings suffer only misery and rarely happiness, while some of these experience only happiness and rarely any misery. There are also some who enjoy an admixture of happiness and misery.

A number of instances, contained in *Bhagavatī*, depict the consequences in terms of *karma*-bondage, of the day to day affairs of the persons, hailing from all walks of life viz. monks, laymen, warriors, physicians, merchants etc. The routine affairs and activities like laughing, lieing, litting-fire have been made subject to *karma*-bondage.

Bhagavatī maintains that knowledge and belief of the present existence will continue in the next existence but conduct, asceticism and self-discipline will not.[22] Beings without self-discipline, not observing commandments, and not renouncing bad karman may become gods in the abode of *Vāṇamantaras* etc.[23] On account of unwillingly suffered thirst, hunger etc. Jaina monks because of doubt, desire, uncertainty, defection and blemish, bind *Kāṁkṣāmohanīya* karman.[24] The consequences, for a monk, of taking food intentionally prepared for him, results in binding all eight karman, except quantity of life.[25]

The *Īryāpathika* karman bound by monks is consumed within two *samayas*. The activity of monk is due to *pramāda* (carelessness) and due to *Yoga* (activity).[26] Teacher (*Upādhyāya*), serving his *gaṇa*, well, will attain liberation.[27] A monk transgressing prohibitions and enjoying prohibited objects, binds seven types of karman, except age-determining *karman*.[28]

In hundreds, thousands and millions of years, a hellish being does not cosume as much karman as a monk annihilates in an instant.

If a layman, having practised *sāmāyika*, stays in an *upāśraya* (monastery), performs passional influx action and not an passionless influx because his self is attached to activity.[30] A layman giving virtuous food to monks etc, brings about annihilation of karman. Even though the food is impure, the annihilation of karman, he brings about is still greater than the inauspicious act he commits.[31] If a monk gets an *arṣa* and a physician gently cuts it off, in that physician binds *karma* where as the monk does not.[32] Again, if two equally strong men fight, the one whose karman results in *Vīriya* wins.[33] A buyer and a seller bind *karmas* due to special cases of bying and selling.[34]

Bhagavatī mentions that whenever a person, who pronounces a false accusation is reborn as a man, he will have to endure, being treated in the same way.[35]

Effects of certain psychic states as well as laughing etc. activities, with regard to *karma* bondage, has been dealt in this text.

The one, subjugated by four passions, binds all eight types of karma except Age - determining karman.[36] The one, subjugated by his senses, binds only seven *karmaprakṛtis* like above. In the same way while laughing and becoming inquisitive, a living being binds seven types or eight types[37]. A person, having performed auspicious and blissful *karmas*, properly attains silver, gold etc. wealth[38]. *Bhagavatī* also depicts that of two equal men, karmas are stronger with the one that lights a fire-body than with the one that extinguishes it.[39]

Now we come to such concepts, occurred in *Bhagavatī*, as deal with the eight *karmaprakṛtis* in terms of their bondage, duration, realisation and annihilation. The bondage of *karma*, has been treated in

this text at length, along with its types and sub-types. *Bhagavatī* deals with *karma* bondage etc. in connection with the 24 kinds of beings in the world.[40] The 24 kinds of beings,often repeated here in the contexts of Jaina Karma doctrine,needs elaboration. It comprehends the hellish beings, the ten kinds of *Bhavanvāsī* gods, the five kinds of one-sensed beings, two sensed beings, three sensed beings and four sensed beings, five sensed animals, men, *Vāṇamantara*, *Jyotiṣka* and *Vaimanika* gods.

Bhagavatī[41] also treats the above subject from the view-point of eleven (qualities), namely -

1. *Jīva* (kind of soul)
2. *Leśyā* (colouring of soul)
3. *Pākṣika* (belonging to the light or dark half of existence)
4. *Dṛṣṭi* (belief)
5. *Jñāna* (knowledge)
6. *Ajñāna* (ignorance)
7. *Samjñā* (instinct)
8. *Veda* (sex)
9. *Kaṣāya* (passion)
10. *Yoga* (activity)
11. *Upayoga* (consciousness)

According to *Bhagavatī*, heaviness and lightness of the soul is a result of committing and abstaining from the eighteen sins, respectively.[42] Five colours, two smells, five tastes relate to *karma prakṛtis* on account of eighteen sins. The possibility of the simultaneous occurrence of the different kinds of karman in one being also has been dealt herein. The actions of living beings always bring about accumulation of particles of karman. The one, who binds all eight kinds of karman, except Age-determining, may experience all of the twenty two *pariṣahas* but only twenty of them at the same time. It also held that of the two beings of the same species. living in the same abode, the one that is sinful and heretical has more karman, action, influx and perception than the one that is sinless and with right attitude. It also discusses *karma* bondage of souls of twenty four *daṇḍakas*. with regard to *anantaropapannaka*[43]- living in the first *samaya* of their existence,

paramparopapannaka[44] - in the later *samaya*, *anantarāvagāḍha*[45] - in the first *samaya* of their occupation of the new place of origin, *paramparāvagāḍha*[46] - in a later *samaya* of their occupation of the new place of origin, *anantarāhāraka*[47] - in the first *samaya* of their attraction of matter, *paramparāhāraka*[48] - in later *samaya* of their attraction of the matter, *Anantaraparyāptaka*[49] - in the first *samaya* of their development and *paramparaparyāptaka*[50] in the later *samaya* of their development. Also in connection with *Carima*-that will again enter the same existence and *Acarima*-that will not enter the same existence again. In the same vein, binding or not binding of unauspicious karmans, eight karmans, in past, present and future, as well those having bound, perceived or finished has been treated. Regarding the bondage of *Karkaśavedanīya*[51]- experienced as suffering and *Akarkaśavedanīya*-experienced as without suffering, *Bhagavati* propounds that by the eighteen sins certain souls produce karmas of the former type while the abstinence from these sins produce later type of karman. Of *calitam*[52] (moving out) and *acalitam* (dormant) karmas, bondage, fructification, suffering, intensification, piling, cementing, are concerned with the latter only while destruction applies to the moving out.

The karman resulting from an afflux action bound only by human beings who, though formerly women, men or neuters, have got rid of the sexual feelings. This binding always has a beginning and an end. This, *Iryāpathika*[53] *Karma* is always bound as a whole by the whole. Among men of the three sexes, both those having the sexual feeling and those having got rid of it, may bind karman resulting from *sāmparāyika* bondage. The binding may have a beginning or not. If it has a beginning it has also an end . *Sāmparāyika karma* is bound as whole by the whole.[54] Binding is also distinguished as material and psychic. Material binding is two-fold- *Visrasā* (spontaneous) and *Prayoga* (brought about by the impulse). Psychic bondage is that of fundamental species and sub-species. Both the forms of psychic bondage exist in all beings and apply to all of the eight types of karman.

The binding of karman is three fold, effected by the *Jīvappaoga* (exertion of soul) *Anantarabandha* (immediate) and *Paramparabandha* (mediate).[55] This is true for all hellish, animals, men and gods. This is

The binding of karman is three fold, effected by the *Jīvappaoga* (exertion of soul) *Anantarabandha* (immediate) and *Paramparabandha* (mediate).[55] This is true for all hellish, animals, men and gods. This is demonstrated for the binding of the eight kinds of karman and their realisation (udaya) as well as for the binding of sexes (veda) bodies, instincts, *leśyās*, kinds of belief and kinds of knowledge and non-knowledge.

The fifteen places, where karman is bound and consumed, are the five *Bhāratas*, five *Airāvatas* and the five Mahāvidehas. The thirty places that are free from karman are five *Himavatas*, five *Hirnayavatas*, five *Harivarṣas*, the five *Ramagga*, the five *Devakurus* and five *Uttarakurus*.

Bhagavatī also depicts minimum and maximum duration of their incubation period. The period of effectiveness of karman equals its thinless its *abādhā*. Again the description about the *Kāṁkṣā-ṁohanīya*-faith deluding and Age-determining *karmas* to different beings, is found.

In the conclusion we may say that the first impression we get while going through the *Bhagavatī* that it has treated each and every subject very exhaustively. Treatment of *Bandha*, *Udai* and *Sattā* according to 24 *Danḍakas* and 11 *sthānas*, for the first time occurred here. The bondage etc. due to routine activities of common men as well as of monks is a significant contribution of this text. Again, the detailed treatment to the *karma* bondage of one sensed beings is not found in the earlier Jaina Canonical texts.

The absence of treatment of *karma* doctrine according to the Stages of Spiritual develoment confirms that till the date of *Bhagavatī* concept of *Guṇasthāna* has not come into being as indicated by Porf. S. M. Jain in his tract *Guṇasthāna Siddhāntā kā Vikāsa*.

It may also be pointed out that apart from the doctrinal aspect of karma there might have been an effort on the part of the Jaina *Ācāryas* to regulate the daily activities of common men as well as of monks, in the framework of *karmas*.

References

(1) Dr. Ashok Kumar Singh, "Prācīṇa Jaina granthṅo Mṅe Karma Siddhānta kā Vikāsakrma", *Aspects of Jainology Vol. 5*, ed. Prof. S.M. Jain & Dr. A.K. Singh, Pārśvanāth Vidyāpīth, Varanasi-5, 1994, pp.101-113.

(2) कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।
संयोग एषां न लात्मभावादात्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥२॥ *Eighteen Principal Upaniṣadas* Vol. ed. V.P. Limaye & R. D. Vadekar, Vaidika Saṁśodhaka Mandal, Poona, 1958, 1/2/2, p. 283.

(3) Pf. Dalsukha Malvania, *Ātmamīāṁsā*; Jaina Cultural Research Society, Varanasi -5, 1963 ; p. 95

(4) Vide Dr. A.K. Singh, "Prācīna Granthṅo"*Aspects* Vol, 5, Pārśvanātha, 1994, pp. 103-4 (*Ācārānga*), 104-5 (*Sūtrakṛtānga*) 105-6 (*Ṛṣibhāṣīta*), 106 (*Uttarādhyayana*), 107&8 (*Sthānānga*) and 109-10 (*Samavāyānga*)

(5) *Prajñāpanāsūtra* ed. Madhukar Muni, Jināgama Granthamālā 16, Āgama Prakāśana Samiti, Byavar (Raj) 1983.

(6) *Anuyogadvārasūtra* ed. Madhukar Muni, Jināgama Granthamālā 28, Agama Prakasana Samiti, Byavar (Raj 1987),

(7) *Vyākhyāprajñaptisūtra* (5 Vols) ed. Madhukar Muni, Jināgama Granthamāla No, Āgama Prakāśana Samiti, Byavar (Raj) Vol.1 *Śataka* 1/*Uddeśaka* 1/*Sūtra* 5(2), 9, and 1/4/6,

(8) *Ibid* -

(9) *Ibid* - 17/4/19

(10) *Ibid* - 25/8/8

(11) *Ibid* - 16/2/17

(12) *Ibid* - 37/5/12

(13) *Ibid*

(14) *Ibid* - 26

(15) *Ibid* - 7-1

(16) *Ibid* - 7/2/20

(17) *Ibid* - 31/9/20

(18) *Ibid* - 1/10

(19) *Ibid* - 5/31

(20) *Ibid* - 5/5/20

(21) *Ibid* - 6/10/11

(22) *Ibid* -

(23) *Ibid* - 1/1/12(2)

(24) *Ibid* - 1/3/15 (2)

(25) *Ibid* - 1/9/20

(26) *Ibid* - 3/3/10

(27) *Ibid* -

(28) *Ibid* - 7/8/9

(29) *Ibid* - 16/4/2

(30) *Ibid* - 7/3/16

(31) *Ibid* - 8/6/1

(32) *Ibid* - 16/3/50

(33) *Ibid* - 1/8/9

(34) *Ibid* - 5/6/5

(35) *Ibid* - 5/6/20

(36) *Ibid* - 12/2/21

(37) *Ibid* - 5/4/7

(38) *Ibid* - 3/1/6

(39) *Ibid* - 5/6/9

(40) *Ibid* - 1/1/6-10, 7/6/15-30, 7/8/3-4, 19/8/5-7, 16/2/17-19, 18/3/21-23, 26/1/34-43

(40) *Ibid* - 1/1/6-10, 7/6/15-30, 7/8/3-4, 19/8/5-7, 16/2/17-19, 18/3/21-23 and, 26/1/34-4341. *Ibid* - 26/1/1-33

(42) *Ibid* - 1/9/9

(43) *Ibid* - 26/2/1-9

(44) *Ibid* - 26/3/1-2

(45) *Ibid* - 26/4/1

(46) *Ibid* - 26/5/1

(47) *Ibid* - 26/6/1

(48) *Ibid* - 26/7/1

(49) *Ibid* - 26/8/1

(50) *Ibid* - 26/9/1

(51) *Ibid* - 7/6/15

(52) *Ibid* - 17/4/19

(53) *Ibid* - 8/4/19

(54) *Ibid* - 18/3/15-16

(55) *Ibid* - 20/7/4-7

(56) *Ibid* - 34/1, 3910, 4-11

(57) Prof. Sagarmal Jain, *Gunasthana siddhanta*; *Ek Vaslesana*, p.v. No. 87, Parsvanatha Vidyapeeth, Varanasi- 1996,

---

Add.

Guṇavrata and Upāsakadaśāṅga

Dr. Rajjan Kumar

Guṇavrata is a kind of vow concerned with householders. It is a reinforcing vow and also known as qualitying vow. Different types of vows are practised by monks and householders. The vows of monks are known as *mahāvratas* or great vows. Monks accept their vows with full strength and complete awareness. That is why their vows are called *Sarvavirata* (totally abstained). On the other hand a householder can not accepts his vow in full strength like that of a monk due to fulfil his social obligations. Thus the vows of householders are called Deśavirata (partial). Partial vows are 12 in numbers and divided into three categories viz. I.5 *Aṇuvratas* (minor vows), II.3 *Guṇavratas* (qualitying vows) and III. 4 *Sikṣāvratas* (Supplementary or Educative vows) this is much developed and later division of the partial vows. The earlier division is rather different and only categorised in two parts- I.5 *Aṇuvratas* and II.7 *Sikṣāvratas*. That is found in ancient Jain canonical scriptures.

Jain scriptures are known as *Āgama* and found in large numbers. The Āgamas are divided into *Aṅga, Upāṅga, Mūlasūtra, Chedasūtra, Prakīrṇaka* and others. The Aṅga is the oldest among all the Āgamas. It is 12 in numbers, but exist only 11. The *Upāsākadaśāṅga* is one of them. It describes the accepted vows and lifestyles of those Jain householders who live at that time when Lord Mahavir was alive. In this *Aṅga* Āgama the partial vows are divided into two categories- 1.5 *Aṇuvratas* and II.7 *Sikṣāvratas*. We have several editions of this Aṅga-Āgama edited by different scholars and monks. Most of them describe the two categories of the partial vows. But some editions of the *Upāsakadaśāṅga* contain the later divisions of the partial vows i.e. 1.5 *Aṇuvratas*, II.3 *Guṇavratas* and III.4 *Sikṣāvratas*. This usage creates a scholastic problems. To check them we collect following editions of the *Upāsakadaśāṅga* :-

1. *Uvāsagadasāo* : Edt. Bechardas Doshi, Prākritavidyā Mandala, L.D. Istitute of Indology, Ahmedabad.

Lecr. Parshvanath Vidyapeeth, karaundi, Varanasi-5

2. *Upāsakadaśāṅga* : Edt. Amolak Rishi, Jaina Śāstroddhāra Mudarnālaya, Sikandarabad, 1972
3. *Uvāsagadasāo* (Aṅgasuttāni, Pt-3) Edt, Acārya Tulsi, Jaina Vishva Bharati, Ladnun (Raj) 2031
4. *Uvāsagadaśāo* : Edt. Shri Madhukar Muni, Agama Prakāśana Samiti, Byavar (Raj). 2037
5. *Upāsakadasāṅgasūtra* : Edt. Shri Ghasilalji, Swetambara Sthanakvasi Jain Sangh, Karachi, 1993
6. *Upāsakadaśā* : (Āgama Sudhā Sindhu) :- Shri Jinendra Vijayagani, Harsha Pushpāmṛuta Jaina Granthamālā, Lakhabavala, Shantipuri (Saurashtra)
7. *Uvāsagadasāo* : (Abhayadeva Commentary) Pt. Bhagavandas Harshachand Jainananda Pustakalaya Gopipur, surat, 1992

Among all the above mentioned editions of the *Upāsakadaśaṅga* only two, edited by Madhukar Muni and Ghasilalji describe the three division of the partial vows. In both the editions the reading (pāṭhā) is in the form of the preachings of Lord Mahāvīra. Both the editors conclude the same reading in different ways. Madhukar Muni adds some readings in such a way that it looks like an original reading of the *Upāsakadaśāṅga*. On the other hand, shri Ghasilalji quotes it as a supplment reading. We can observe and compare both the readings in following ways :-

(धर्मकथामूलम्)

अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तंजहा-पंच अणुव्वयाइं, तिण्णि गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं ।। पंच अणुव्वया, तंजहा ....।। तिण्णि गुणव्वयाइं, तंजहा- अणत्थदंडवेरमणं, दिसिव्वयं, उवभोगपरिभोगपरिमाणं । चत्तारि सिक्खावयाइं, तंजहा- सामाइयं, देसावगासियं, पोसहोववासे, अतिहिसंविभागे,.......!......आणाए आराहए भवइ ।।[२]

अगारधम्मं दुवासलविहं आइक्खइ, तं जहा-पंच अणुव्वयाइं, तिण्णि गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं । पंच अणुव्वयाई, तं जहा ---------। तिण्णि गुणव्वयाइं तं जहा - अणत्थदंडवेरमणं, दिसिव्वयं, उवभोग- परिभोगपरिमाणं । चत्तारि सिक्खावयाइं, तं जहां-सामाइयं,देसावगासियं, पोसहोववासे, अतिहिसंविभागे......... ! आणाए आराहए भवइ ।[३]

We can also observe that those editions of the *Upāsakadaśāṅga* which do not mention that reading, which contain the word *Guṇavrata*. The readings are as follows :

तएणं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावईस्स गाहावईस्स तीसेय महति[4]....

तएणं समणे भगवं महावीरे आणन्दस्स गाहावइस्स तीसे[5]........................

तएणं समणे भगवं महावीरे आणन्दस्स गाहावइस्स तीसे [6]........................

The above investigation has raised some fundamental problems viz. I. That the concept of *Guṇavrata* is as old as the *Upāsakadaśāṅga*, II. That this concept is not so old as the *Upāsakadaśānga*, That III *Guṇavrata* is a later concept of the vows, and Iv. That it is a developed concept. If we try to discuss on all these points, we have following findings :- Now, the question is out of the above mentioned editions of *Upāsakadaśaṅga* which one is correct, whether those which contain that reading wherein *Guṇavrata* incited are correct or those volums are correct which do not mention that reading. On the basis of only one reading we can not conclude like that and also not raise the question of the authenticity of those editions. Here, we can only try to find out the sources of that reading. Because, if it is not an original reading of the *Upāsakadaśaṅga*, it means it is an addition and has some sources.

According to the Jain a scholrs the *Guṇavrata* is rather new and a developed concept. As the *Upāsakadaśāṅga* is very old and this concept should not have been mentioned in it. Here we quote the view of Dr. S.M. Jain, an eminent Jain a scholar[7]-" The divisions of *Guṇavrata* and *Śikṣāvrata* came in existence after the composition of the *Upāsakadaśāṅga* and the *Tattavārthasūtra*. Those Jain scriptures mentioning such types of division are not so old. They are composed after those two scriptures". Thus, we opine that the reading of the *Upāsakadaśāṅga* that mentions the concept of *Guṇavrata* is not an original reading of this *Āgama*. It is a later interpolation.

Now, we would like to find out the sources of this reading. We used the copies of the *Upāsakadaśāṅga* edited by Ācārya Tulsi and MadhukarMuni for investing the sources of that reading. Madhukar Muni has written in his Hindi Commentary[8]-" Seven *Śikṣāvratas*

are cited in the *Aupapātikasūtra*, this concept is mentioned there in. This commentary of Madhukar Muni not only shows a direction but also creates an academic problem. The concept of *Guṇavrata* and *Śikṣāvrata* are described in the *Aupapātikasūtra*, but Munishri has mentioned only *Śikṣāvrata* in his Hindi commentery of the *Upāsakadaśāṅga*. Though earlier he used the reading of the *Aupapātikasūtra* in the *Upāsakadaśāṅga* in such a manner, that it looks like an original reading of the *Upāsakadaśāṅga*, but the concept of *Guṇavrata* is not so old and that fact has been supported in his Hindi commentary of the *Upāsakadaśāṅga*. To eliminate this problem we can see below that reading of the *Aupapātikasūtra* too :-

अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ, तं जहा - १ पंच अणुव्वाइं, २. तिण्णि गुणव्वयाइं, ३. चत्तारि सिक्खावयाइं । पंच अणुव्वयाइं तं जहां .... । तिण्णि गुणव्वयाइं, तं जहा ६. अणत्थदंडवेरमणं, ७. दिसिव्वयं, ८. उवभोगपरिमाणं चत्तारि सिक्खावयाइं तं जहा - ९. सामाइयं, १०. देसावयासियं, ११. पोसहोववासे, १२. अतिहिसंविभागे....... ! आणए आराहए भवई ।[९]

The above mentioned reading of the *Aupapātikasūtra* is reconciled with that reading used by Madhukar Muni and Ghasilalji in their editions of the *Upāsakadaśāṅga*[10]., Acārya Tulsi has mentioned the name of the *Aupapātika sutra* in the foot note of the *Upāsakadaśāṅga*. Ofcourse, Acārya Tulsi has accepted the modern Research Methodology but Madhukar Muni and Ghasilalji belive in traditional methods.

There is a tradition that a reading or verse may be interpolated in any *Āgama*, if that reading or verse possess the word 'Jāva'. This traditional methods for addition or completion of a reading is widely accepted by the editors of the *Āgamas*. Hence, Muni Madhukarji and Gahsilalji both have used this methodology in their editions of the *Upāsakadaśāṅga* and completed the reading. We quote those readings of the *Ūpāsakadaśāṅga* containing the word 'Jāva' as follwos."[11]

.... परिसाए जाव धम्मकहा ।

.... परिसाए जाव धम्मं परिकहेइ ।

.... महलियाए जाव धम्मकहा ...:.।

..... परिसाए जाव धम्मकहा... ।

..... महइमहालियाए जाव धम्मकहा ....

... परिसाए जाव धम्म-कहा... ।

On the basis of the above discussion we can conclude that *Guṇavrata* is not described in the *Upāsakadaśāṅga*. If some editions of this text mention the concept of *Guṇavrata*, we should understand that this is borrowed from other sources. *Guṇavrata* is a later and developed concept and it is mentioned in the *Upānga Āgama* - the *Aupapātika*. The reading of the *Upāsakadaśāṅga* which mentions this concept is borrowed from this *Upāṅga*. *Upāṅga* is an appendix of the *Aṅga Āgama* and this fact has been proved. Normally the facts cited in *Upāṅgasūtra* are new in comparsion to the fact , described in the *Aṅga Āgama*, the concept of *Guṇavrata* is mentioned in the *Aupapātikasūtra* not in the *Upāsakadaśāṅga*. Hence, it is a new and developed concept and not cited in the original verse of the *Upāsakadaśāṅga*.

References :-

1. *Uvāsagadaśāo* (Madhukar Muni) 1/11 pp.19-21
   Upāsakadaśāṅgasūtra (Ghashilalji), p.51
2. *Upāsakadaśāṅgasūtra* (Ghashilalji) p.51
3. *Uvāsagadaśāo* (Madhukar Muni), 1/11, p.21
4. *Upāsakadaśāṅgasūtra* (Amolak Rishi), 1/11, p.7
5. *Uvāsagadaśāo* (Pt. Bechardas Doshi), 1/11. p.3
6. *Upāsakadaśāṅga* (Abhayadeva Commentary), p.6
7. *Jaina dharma kā Yāpnīya Sampryadāya* - Dr. Sagarmal Jain, ParashvanathVidyapith, Varanasi, 1995 P.334
8. *Uvāsagadaśāo* (Madhukar Muni), p.57
9. *Aupapātikasūtra* (Madhukar Muni), Byavara (Raj), p.113
10. *Uvāsagadaśāo* (Aṅgasuttāṇi, pt III) - Acārya Tulsi, p.399
11. *Uvāsagadaśāo* (Doshi), 1/11, p.3; *Uvāsagadaśāo* (Ācārya Tulsi),1/21, p.399; *Uvāsagadaśāo* (Amolaka Rishi), 111. p. 7; *Upāsakadaśāṅga* (AbhayadevaCommentary).p.6; *Upāsakadaśānga* (Jinendravijayagani), 1/5. p.263; *Uvāsagadaśaö* (Madhukar Muni) 1/11. p.19.

जैन-जगत्

पुरस्कार एवं उपाधि

आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार

जैन भाषाशास्त्र के शीर्षस्थ विद्वान् प्रो० हरिवल्लभ चू० भायाणी एवं जैन स्थापत्य और कला के मूर्धन्य विद्वान् प्रोफेसर मधुसूदन ढाकी को वर्ष १९९५-१९९६ का हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार भोगीलाल, लहेरचन्द्र इन्स्टीट्यूट आफ इन्डोलोजी, दिल्ली के वल्लभ स्मारक काम्प्लेक्स में एक सादे समारोह में ८ जून १९९७ को प्रदान किया गया। यह पुरस्कार विख्यात उद्योगपति एवं समाजसेवी श्री श्रेणिक कस्तूरभाई तथा इन्दिरा गांधी नेशनल सेंटर आफ आर्ट्स के सचिव श्री मुनीष चन्द्र जोशी के करकमलों द्वारा प्रदान किया गया। इसी अवसर पर प्राकृत भाषा के समर स्कूल का समापन सत्र भी आयोजित किया गया था, जिसमें अनेक विद्वान् एवं गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से विद्वद्द्वय को हार्दिक बधाई।

(२)

साहित्य पुरस्कार

"**कर्मवीर**" पत्रिका और "इस्टिट्यूट फॉर जैन सोशल स्टडीज, पुणे" ने दो साहित्य पुरस्कारों की घोषणा की है।

१. वीरानुयायी आ. भा.मगदुम पुरस्कार - २१००/- रु०

२. लक्ष्मण आण्णाजी फलटणे पुरस्कार - ११००/- रु०

यह दानों पुरस्कार हर वर्ष हिन्दी/मराठी/कन्नड/ गुजराती/ **अंग्रेजी** में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाशित पुस्तकों/लेखों पर दिये जायेंगे -

१. जैन समाज, जातियां, उपजातियां आदि

२. जैन इतिहास और संस्कृति

३. चरित्र और आत्मचरित्र

कृपया प्रकाशित पुस्तकों/लेखों की एक-एक प्रति निम्नलिखित पतों पर भेजें -

१. **महावीर सांगलीकर,**
संचालक, कर्मवीर,
२०१, मुंबई - पुणे मार्ग
चिंचवड पूर्व, पुणे ४११ ०१९.

२. **प्रोफेसर प्रदीप फलटणे,**
संचालक, इन्स्टिट्यूट फॉर
जैन सोशल स्टडीज,
१६३, यशवंत नगर, तलेगांव स्टेशन
पुणे - ४१० ५०७

राजकुमारी कोठारी को पी- एच० डी० की उपाधि

उदयपुर, राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय द्वारा राजकुमारी कोठारी को उनके शोध-प्रबन्ध **''ज्ञाताधर्मकथा का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन''** विषय पर विद्या वाचस्पति की उपाधि प्रदान की गई है।

श्रीमती कोठारी ने यह शोध-प्रबन्ध हिन्दी राजस्थानी विभाग, राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर से, साहित्य संस्थान के निदेशक प्रसिद्ध साहित्यकार डा. देव कोठारी के निर्देशन में पूर्ण किया है।

इस शोध-प्रबन्ध में ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी में प्रतिपादित धर्म कथाओं के माध्यम से दिये गये उपदेश, तत्कालीन समाज और संस्कृति, भाषा-शैली, कथा साहित्य का विकास एवं साहित्यिकता का विस्तार से अध्ययन किया गया है। आशा है यह शोध-प्रबन्ध प्राकृत कथा-साहित्य के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

उल्लेखनीय है कि आपके पति डॉ० सुभाष कोठारी भी जैन आगम ग्रन्थ 'उपासक दशाङ्ग' पर १९८६ में पी-एच.डी. कर चुके हैं। जैन आगम ग्रन्थों पर शोध कार्य करने वाले राजस्थान के ये प्रथम दम्पति हैं। श्रीमती राजकुमारी कोठारी को पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिवार की तरफ से हार्दिक बधाई।

डॉ० सुरेश सिसोदिया उदयपुर लायन्स क्लब के अध्यक्ष निर्वाचित

पार्श्वनाथ विद्यापीठ से अभिन्न रूप से जुड़े आगम, अहिंसा, समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर के शोधाधिकारी डॉ० सुरेश सिसोदिया को वर्ष १९७७-९८ के लिय लायन्स क्लब का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया है।

सामाजिक कार्यों में अपनी सक्रिय सहभागिता निभाने वाले डॉ० सिसोदिया को

इस सम्मान के लिए विद्यापीठ की हार्दिक बधाई।

विद्यापीठ के चार शोधार्थियों को पी- एच. डी. की उपाधि

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के लिये यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि यहाँ के चार शोधार्थियों को विगत दिनों उनके शोध-प्रबन्धों पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि प्रदान की गयी।

शोधार्थी	शोध प्रबन्ध-शिर्षक	निर्देशक	सह निर्देशक
१. श्री असीम कुमार मिश्र	"ऐतिहासिक अध्ययन के जैन स्रोत एवं उनकी प्रामाणिकता: एक अध्ययन"	प्रो० सागरमल जैन	डॉ० हरिहर सिंह, प्रवक्ता प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व विभाग, का० हि० वि० वि०
२. श्रीमती शीला सिंह	"द्रौपदी कथानक का जैन और हिन्दू स्रोतों के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन"	डॉ० अशोक कुमार सिंह	डॉ० रामायण प्रसाद द्विवेदी, रीडर, संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०
३. कु० रंजना कालविण्ट	"वाल्मीकी रामायण तथा पउमचरियं (जैनरामकथा) का तुलनात्मक अध्ययन"	डॉ० अशोक कुमार सिंह	डॉ० रामायण प्रसाद द्विवेदी
४. श्रीमती रत्ना गिरि	"भारतीय संस्कृति में व्रात्य की अवधारणा"	डॉ० अशोक कुमार सिंह	प्रो० जयशंकर लाल त्रिपाठी, संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०

विद्यापीठ परिवार उक्त शोधार्थियों को हार्दिक बधाई देते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

उल्लेखनीय है कि अबतक पार्श्वनाथ विद्यापीठ से विभिन्न विषयों में कुल ५३ शोध-छात्र पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त कर चुके है।

जिनागमों की मूल भाषा पर द्विदिवसीय विद्वान्-संगोष्ठी

प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, प्राकृत विद्या मंडल और प्राकृत जैन-विद्या विकास फंड नाम की तीन संस्थाओं के संयुक्त तत्त्वावधान में तथा जैनाचार्य श्री सूर्योदय सूरीश्वरजी और श्री शीलचन्द्रसूरिजी की पावन निश्रा में अहमदाबाद के शेठ हठीसिंह केसरीसिंह वाडी के भव्य जैन मंदिर के परिसर में "जैन आगमों की मूल भाषा" संबंधी एक विद्वत्-संगोष्ठी दिनांक २७-२८ अप्रैल, १९९७ को आयोजित की गयी।

अभी-अभी दो एक वर्षों से जैन धर्म के कतिपय मुनिवरों और अमुक विद्वानों द्वारा ऐसा मत प्रस्थापित करने का जोरदार प्रयत्न किया जा रहा है कि महावीर और उनके आगमों की भाषा अर्धमागधी प्राकृत नहीं बल्कि शौरसेनी प्राकृत थी। इस नये अभिगम और मतभेद का प्रामाणिक मूल्यांकन तथा परीक्षण करना अनिवार्य बन गया था। इसीलिए आचार्य श्री की प्रेरणा से इस विद्वत्-संगोष्ठी का आयोजन हुआ।

दो दिन की इस संगोष्ठी में स्थानीय और भारत के विविध स्थलों से आगत विद्वानों द्वारा १३ शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये। इसमें जैन दर्शन के शीर्षस्थ विद्वान् पं. दलसुखभाई मालवणिया, डॉ. हरिवल्लभ भायाणी, डॉ. मधुसूदन ढाकी, डॉ. सागरमल जैन, डॉ. सत्यरंजन बनर्जी, डॉ. रामप्रकाश पोद्दार, डॉ. एन. एम. कंसारा, डॉ. के. ऋिषभचन्द्र, डॉ. रमणीक शाह , डॉ. भारती शैलत, डॉ० प्रेमसुमन जैन, डॉ० जितेन्द्र शाह, डॉ. दीनानाथ शर्मा, समणी चिन्मयप्रज्ञा एवं कु. शोभना शाह ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त अन्य लगभग चालीस विद्वानों ने भी संगोष्ठी की चर्चा में सक्रिय भाग लिया।

दिनांक २६ अप्रैल को उद्घाटन समारोह में अतिथि विशेष के रूप में श्वेताम्बर जैन समाज के श्री श्रेणिकभाई कस्तूर भाई, श्री प्रताप भोगीलाल तथा श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन उपस्थित रहे। समारोह का संचालन डॉ. कुमारपाल देसाई ने किया। इस अवसर पर डॉ० के. आर. चन्द्र के द्वारा दस वर्ष के कठोर परिश्रम से भाषिक दृष्टि से पुनः सम्पादित "आचारांग - प्रथम अध्ययन" का विमोचन (लोकार्पण) पं. दलसुखभाई मालवणिया के करकमलों द्वारा किया गया तथा अन्य पांच ग्रन्थों का विमोचन भी विभिन्न महानुभावों द्वारा किया गया।

संगोष्ठी की प्रथम बैठक की अध्यक्षता बहुश्रुत इतिहासविद् तथा स्थापत्यविद् प्रो० मधुसूदन ढांकी ने की। इस बैठक में चार विद्वानों ने अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये।

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र की अध्यक्षता सुविख्यात भाषाशास्त्री डॉ० सत्यरंजन बनर्जी (कलकत्ता) ने की। इस बैठक में पाँच शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये। जिसमें डॉ० सागरमल जैन, डॉ० पोद्दार, डॉ० बनर्जी आदि के व्यक्तव्य विशेष ध्यान आकर्षित करने वाले और मौलिक संशोधन युक्त थे।

उसी दिन अंतिम (तीसरी) बैठक की अध्यक्षता जैन-विद्या और भारतीय संस्कृति के गहन अभ्यासी डॉ० सागरमल जैन पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने की। उन्होंने इस बैठक का सुंदर संचालन किया। इस बैठक में इस संगोष्ठी के पुरोधा डॉ० के० आर० चन्द्र सहित चार विद्वानों ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये।

प्राकृत भाषा और साहित्य को केन्द्र में रखकर सभी विद्वानों के शोध-प्रबंधों का सार यह था कि - १. भगवान् महावीर की भाषा अर्ध-मागधी ही थी। २. शौरसेनी से अर्धमागधी भाषा प्राचीन है। ३. जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी ही है। ४. शौरसेनी भाषा में आगम साहित्य नहीं है ऐसा नहीं है, परन्तु वह अर्धमागधी आगमों की अपेक्षा परवर्ती काल का है, प्राचीन नहीं है।

संगोष्ठी के श्रोतागण एवं सक्रिय भाग लेने वालों में विख्यात साहित्यकार प्रो० जयंत कोठारी, सी० वी० रावल, गोवर्धन शर्मा, मलूकचंद शाह, नितिन देसाई वी० एम० दोशी, विनोद मेहता, वसंत भट्ट, विजया पंडया, कनुभाई शेठ, ललितभाई, निरंजनाबोरा, जागृति पंडया, गीता मेहता तथा अन्य क्षेत्रों के विद्वानों की उपस्थिति बहुत ही संतोषप्रद रही।

डॉ० मधुसूदन ढाकी और डॉ० एस० आर० बनर्जी जैसे प्रतिभावंत विद्वानों ने अपने सेन्स ऑफ ह्यूमर से उसे रसप्रद बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, यह एक विरल घटना थी। संगोष्ठी का वातावरण रसप्रद, जीवंत और तार्किक रहा।

"संगोष्ठी के समापन के प्रसंग पर आचार्य श्री शीलचन्द्रसूरिजी ने मार्मिक और संवेदनशील शब्दों में कहा कि -

हम लोग अनेक विवादों को लेकर बैठे हैं, उनसे अब तक थके नहीं और भाषा के नाम से चली आ रही एकता को भी नष्ट करने हेतु यह नया विवाद खड़ा किया गया है। यह विवाद किसलिए ? क्या किसी की परम्परा, अस्मिता या गौरव समाप्त करने का उद्देश्य इसके पीछे जुड़ा हुआ है ? यदि ऐसा हेतु होगा तो वह कभी भी सफल नहीं होगा। परंपरा से दोनों ही संप्रदाय के प्राचीन और आधुनिक विद्वानों ने तथा तटस्थ विदेशी विद्वानों ने आगमों की जो भाषा स्वीकार-कर मान्य रखी है उसका विच्छेदन करना और नयी काल्पनिक बात की अनेकांत के नाम से पुष्टि करना यह किसी भी प्रकार से उपयुक्त नहीं है। विशेष तौर पर उन्होंने यह भी कहा कि कितने विद्वान-मित्र "नरो वा कुंजरो वा" के सिद्धांत को मानते हैं। इधर आये तो इधर भी 'हाँ" और उधर जाये तो उधर भी "हाँ"। ऐसी पद्धति चाहे वे कितने बड़े विद्वान हों, उन्हें वास्तविक रूप में एकेडेमिक शोध अध्येता की कोटि में लाकर खड़ा नहीं किया जा सकता। उनकी श्रद्धेयता स्वीकारने योग्य नहीं रहती। ऐसे मित्रों को मेरी सौहार्दपूर्ण सलाह है कि उनको शौरसेनी का पक्ष उचित लगे तो वही पक्ष स्वीकार करना चाहिए परन्तु दुहरी नीति का आश्रय लेने का आग्रह न रखें।

अंत में अध्यक्षश्री के उपसंहार के साथ संगोष्ठी का समापन सुखद और संवादी वातावरण में पूरा हुआ।

इस संगोष्ठी के आयोजन में डॉ० के० आर० चन्द्र और डॉ० जितेन्द्र बी० शाह की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही । दोनों दिन भोजन की व्यवस्था वक्तावरमलजी बालर, वंसराजजी भंसाली और नारायणचंदजी मेहता तथा निवासादि का प्रबंध सेठ हठीसिंह वाडी ट्रस्ट ने किया था, वे निश्चय ही बधाई के पात्र हैं ।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ में भारतीय चिन्तन में काल की अवधारणा नामक एकदिवसीय संगोष्ठी सम्पन्न

काल-चिन्तन भारतीय जनमानस का एक सर्वाधिक गूढ़तम विचारणीय पक्ष है। भारतीय वाङ्मय में इस विषय पर सहस्रों पृष्ठ लिखे जा चुके हैं । लेकिन अभी भी यह प्राय: अपने प्रारंभिक बिन्दु पर ही स्थिर है जब की कालचक्र सदैव गतिमान रहता है। यह मात्र एक दार्शनिक समस्या न होकर व्यावहारिक महत्त्व का एक चिंतनपूर्ण विषय है । अत: इन सभी बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने भारतीय चिन्तन में काल की अवधारणा'' विषय पर एक दिवसीय संगोष्ठी कराने का निर्णय लिया ।

विद्यापीठ के मंत्री श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन की अनुमति प्राप्त होने पर इसे मूर्त रूप देने के लिए स्थानीय विद्वानों से सम्पर्क किया गया। अत्यन्त अल्पावधि की सूचना पर भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई स्थानीय विद्वानों ने संगोष्ठी में अपनी सक्रिय सहभागिता एवं पत्रवाचन हेतु सहमति प्रदान किया । इसमें प्रो० रेवतीरमण पाण्डेय, अध्यक्ष, दर्शन विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का सहयोग उल्लेखनीय है। दिनांक २८.७.९७ को संगोष्ठी दो सत्रों में संपन्न हुई । प्रथम सत्र: पूर्वाह्न १० बजे से एक बजे तक तथा द्वितीय सत्र अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक ।

प्रथम सत्र	: १० बजे पूर्वाह्न - १.०० बजे अपराह्न
मंगलाचरण	: डा० (श्रीमती) सुधा जैन एवं डॉ० विजय कुमार
माल्यापर्ण एंव	: श्री बी. एन. जैन, मानद मंत्री पार्श्वनाथ विद्यापीठ
संस्थान परिचय	: डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय
दीप-प्रज्वलन एवं विषय प्रवर्तन	: **मुख्य अतिथि** - विद्यावाचस्पति प्रो० विद्यानिवास मिश्र, भूतपूर्व कुलपति सं०सं० वि० एवं काशी विद्यापीठ
सत्राध्यक्ष	: प्रो० कमलेश दत्त त्रिपाठी, संकाय प्रमुख, प्राच्य विद्या, का० हि० वि० वि०,
पत्रवाचक	: प्रो० रेवतीरमण पाण्डेय, अध्यक्ष, दर्शन एवं धर्म विभाग, का० हि० वि० वि०,

: प्रो० आर० के० पाण्डेय, प्रोफेसर, भौतिकी विभाग, का० हि० वि० वि०

विद्यामनीषी प्रो. विद्यानिवास मिश्र ने विषय प्रवर्तन करते हुए काल के सनातन एवं कूटस्थ नित्य माना। उन्होंने अपने उद्बोधन में काल के संबंध में प्रचलित विभिन्न मान्यताओं की व्याख्या करते हुए तीन मत प्रस्तुत किए - १. काल संबंधी रेखीय अवधारणा, २. काल संबंधी शंख वलयाकार अवधारणा एवं ३. काल संबंधी वृत्ताकार अवधारणा।

प्रो० रेवती रमण पाण्डेय ने काल को भारतीय चिन्तन का एक प्रमुख घटक माना। उन्होंने काल-संबंधी अवधारणा का ऐतिहासिक विमर्श प्रस्तुत किया। अपने पत्रवाचन में प्रो० पाण्डेय ने काल संबंधी भौतिकी वैज्ञानिक चिन्तन को तत्त्वमी मांसीय स्वरूप प्रदान किया।

डॉ० आर० के० पाण्डेय ने काल संबंधी वैज्ञानिक चिन्तन को भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। इन्होंने काल के संबंध में उठाए गए प्रश्न-'काल निरपेक्ष अथवा सापेक्ष' का वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत किया। इन्होंने काल के त्रि-आयामी, चतुर्यामी एवं पंचआयामी स्वरूप पर भी प्रकाश डाला।

सत्राध्यक्ष प्रो० त्रिपाठी ने काल संबंधी समस्याओं का निरसन जिस कुशलता से किया वह उनके गंभीर अध्ययन का परिचायक रहा।

द्वितीय सत्र : अपराह्न १.०० - ५.०० सांय

सत्राध्यक्ष : प्रो० रघुनाथ गिरि, पूर्व संकायाध्यक्ष, कला संकाय महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

पत्रवाचक : प्रो० आर. एस. शर्मा, पूर्व अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, का० हि० वि० वि०।

: डॉ० अशोक कुमार सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

मुख्य वक्ता : प्रो० रामजी सिंह, निदेशक गाँधी विद्या संस्थान, राजघाट (वाराणसी)

धन्यवाद ज्ञापन : श्री इन्द्रभूति बरार, संयुक्त मंत्री, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी।

प्रो० शर्मा ने अपने पत्र वाचन में काल संबंधी प्लेटोनियन, कांटीयन, न्यूटोनियन एवं आइंस्टीनियन विचारों को आधार बनाकर भारतीय चिन्तन में इसकी प्रासंगिकता-विषय पर बल दिया। इन्होंने अपने पत्र में मुख्य रूप से काल एवं अन्य सत्तात्मक वस्तुओं में क्या संबंध हो सकता है अथवा होना चाहिए इस विषय पर अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किए।

विद्यापीठ के प्रवक्ता डॉ० अशोक कुमार सिंह ने 'जैन परम्परा में काल की

अवधारणा शीर्षक' पर शोधपत्र प्रस्तुत किया। जैन आगमों में प्राप्त काल विषयक तथ्यों का विवेचन करते हुए श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में काल विषयक अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ० सिंह ने काल के परमार्थ और व्यवहार पक्ष का विवरण प्रस्तुत किया एवं जैनाचार्यों द्वारा काल सम्बन्धी जिन समस्याओं पर विचार किया गया है उनपर भी प्रकाश डाला।

सत्राध्यक्ष प्रो० रघुनाथ गिरि ने अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान में काल संबंधी सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मान्यताओं पर प्रकाश डाला। इन्होंने भारतीय चिन्तन में परिव्याप्त काल संबंधी विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर भी अपने विचार व्यक्त किए।

मुख्य वक्ता प्रो० रामजी सिंह ने काल संबंधी अपने ओजस्वी एवं प्रभावशाली चिन्तन से उपस्थित विद्वानों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इन्होंने काल को एक समस्या न मानकर इसे जीवन का एक अभिन्न पक्ष कहा, जो सर्वदा से इससे युक्त है। इन्होंने काल संबंधी अवधारणा को मानव जीवन के सौन्दर्यात्मक आनुभूतिक पक्ष-कला, नृत्य, गायन आदि का एक अनिवार्य घटक माना। इनका काल चिन्तन संस्कृत साहित्य के छन्दों में भी मुखर प्रतीत होता रहा जो दार्शनिक कल्पनाओं एवं चिन्तन की पराकाष्ठा से मिलकर अपने अवसान को प्राप्त किया। प्रो० राम सिंह जी का यह व्याख्यान वस्तुतः सत्र समापन के रूप में इस चिन्तन का पड़ाव नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसने काल संबंधी विविध नवीन तथ्यों की ओर संकेत किया जो सर्वथा नूतन मत उद्घाटित करने की क्षमता रखता है।

विद्यापीठ के मानद मंत्री माननीय श्री भूपेन्द्रनाथ जी जैन ने संगोष्ठी में पधारे विद्वानों एवं अतिथियों का स्वागत करते हुए उनसे विद्यापीठ के प्रति सद्भाव एवं सहयोग की अपेक्षा की। विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति के संयुक्त सचिव श्री इन्द्रभूति बरार ने संस्थान की तरफ से सभी आगन्तुक विद्वानों एवं अतिथियों का आभार प्रदर्शन किया तथा संगोष्ठी को सफल बनाने में परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान देने वाले सभी लोगों के प्रति अपना आभार प्रकट किया।

संगोष्ठी का आयोजन डॉ० अशोक कुमार सिंह, वरिष्ठ प्रवक्ता, एवं कुशल संचालन डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय, प्रवक्ता पार्श्वनाथ विद्यापीठ ने किया। संगोष्ठी को सफल बनाने में संस्थान के अन्य शिक्षक एवं सहयोगी डॉ० शिव प्रसाद, डॉ० रज्जन कुमार, डॉ० सुधा जैन, डॉ० असीम कुमार मिश्र, डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी, डॉ० विजय कुमार, श्री ओमप्रकाश सिंह एवं श्री राकेश सिंह का अपेक्षित सहयोग मिला। आगन्तुक अतिथियों के जलपान एवं भोजन की सुव्यवस्था के लिए डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय एवं डॉ० सुधा जैन की सभी ने मुक्त कंठ से सराहना की।

काल सम्बन्धी यह एक दिवसीय संगोष्ठी कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण रही, विशेष रूप से पार्श्वनाथ विद्यापीठ की शैक्षणिक गतिविधियों के लिए नवीन ऊर्जा प्रदायक रही।

-डा० रज्जन कुमार

उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियाँ

देश भर की कई संस्थायें होनहार और जरूरतमंद विद्यार्थियों को हर वर्ष छात्रवृत्तियां प्रदान करती हैं। ऐसी संस्थाओं की एक सूची "जैन फ्रेण्डस्" संस्थान ने पुस्तक रूप में प्रकाशित की है। ३०रु० मूल्य की यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए केवल १० रुपयों में उपलब्ध है। निम्नलिखित पते पर मनीऑर्डर द्वारा १०/ रु. भेजकर आप भी यह पुस्तक प्राप्त कर सकते हैं। कृपया मनीऑर्डर फार्म के निचले हिस्से पर अपना नाम-पता लिखना न भूलें।

जैन फ्रेण्डस्
२०१, मुंबई - पुणे मार्ग,
चिंचवण पूर्व, पुणे - ४११ ०१९

श्री विनय मुनिजी म. सा० 'खीचन' का चातुर्मास इन्दौर में

हमारे इन्दौर क्षेत्र में पूज्य गुरुदेव तपस्वीराज चम्पालाल जी महाराज सा. के सुशिष्य श्री विनय मुनिजी म. सा. 'खीचन' इन्दौर के उप नगर में विराज रहे हैं।

आपका इस वर्ष का चातुर्मास 'स्वाध्याय भवन' २५/३, न्यू पलासिया 'इन्दौर' में होना निश्चित हुआ है। इस स्वीकृति से इन्दौर के धर्मप्रेमी अति उत्साहित हैं।

चातुर्मास सम्पर्क :

(१) श्री कमल जी भण्डारी
३०/१, रेस कोर्स रोड़, (न्यू पलासिया),
इन्दौर म. प्र., पिन : ४५२ ००१
फोन निवास : ५३६४४०-४१

(२) श्री आनन्दीलाल जी जैन 'राजा बाबू'
१/३, डॉ. रोशनसिंह भण्डारी मार्ग,
(न्यू पलासिया), इन्दौर
फोन निवास : ४३४९६३,५४५८१२

प्रोफेसर सागरमल जैन का नया सम्पर्क सूत्र

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० सागरमल जैन ३१ जुलाई १९९७ से अवकाश हैं।

उनका पता निम्न रहेगा -
C/O श्री नरेन्द्र कुमार सागरमल जैन
सागर टेन्ट हाउस, नई सड़क
शाजापुर ४६५००१, (म०प्र०)।
दूरभाष : ०७३६४- २२४२५, २१४२५

श्रमण पाठकों की दृष्टि में

१. आदरणीय सम्पादक महोदय,

इस बार 'श्रमण' का अप्रैल-जून, १९९७ का अंक आदि से अन्त तक पढ़ गया। बहुत ही उपयोगी सामग्री है। इसमें जैन धर्म के विविध पक्षों की चर्चा की गयी है। अजैनों के लिये भी यह महत्त्वपूर्ण सामग्री है।

डॉ० के० आर० चन्द्र, भू० पू० अध्यक्ष प्राकृत विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय ७७-३७५, सरस्वती नगर, अम्बांवाडी, अहमदाबाद ३८००१५

२. सम्पादक महोदय,

आपकी सम्पादकीय आन्वीक्षिकी और प्रतिभा से मण्डित "श्रमण" (त्रैमा०) का अप्रैल-जून १९९७ अंक मिला। कहना न होगा की "श्रमण" का प्रत्येक अंक अपने आप में ग्रन्थकल्प होता है। इस अंक के हिन्दी खंड को डॉ. सागरमल शोध-साहित्य विशेषांक या परिशिष्टांक कहें, तो अत्युक्ति नहीं होगी। आपकी बहुआयामी आर्हत प्रतिभा नमस्य है। इस अंक कें १६० पृष्ठों में परिवेषित विद्यास्वादमयी शोध-सामग्री का प्रत्येक पृष्ठ पठनीय और संग्रहणीय है। विशेषतया 'जैन, बौद्ध और हिन्दूधर्म का पारस्परिक प्रभाव; 'आचार्य हेमचन्द्र': एक युगपुरुष तथा सम्राट अकबर और जैन धर्म ये तीनों आलेख मेरे लिए तो अधिक ज्ञानोन्मेषक हैं।

डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव, पी.एन. सिन्हा कालोनी, भिखनपहाड़ी, पटना-६

३. सम्पादक महोदय,

'श्रमण' का जनवरी-मार्च १९९७ का अंक प्राप्त कर अति प्रसन्नता हुई। सामग्री का चयन विशिष्ट तरीके से किया गया है जो सम्पादकों की सम्पादकीय प्रतिभा का परिचायक है।

सुदीप जैन 'सरल', अनेकान्त ज्ञान मंदिर, छोटी बजरिया, बीना (म०प्र०)

४. सम्पादक महोदय,

आपका अप्रैल-जून १९९७ का 'श्रमण' अंक बहुत अभ्यासपूर्ण, वाचनीय और उद्‌बोधक है। अचेलकत्व और सचेलकत्व तथा स्त्री मुक्ति सम्बन्धी लेख विशेष पसंद आया। आपको इन सबके लिए बधाई और धन्यवाद।

- उ० के० पुंगलिया, मानद मंत्री, सन्मति तीर्थ, पुणे।

श्री राजमल जी पवैया की नवीन कृतियों का लोकार्पण

भोपाल, १३ जुलाई, १९९७, महामहिम राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने स्थानीय राजभवन में प्रसिद्ध कवि और तत्त्वमर्मज्ञ श्री राजमलजी पवैया द्वारा तत्त्वसार **विधान** एवं **तत्त्वानुशासन विधान** नामक पुस्तकों का लोकापर्ण किया।

शोक समाचार

अणुव्रत अनुशास्ता गणाधिपति श्रीतुलसी का महाप्रयाण

अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक, २०वीं शती के महान् धर्माचार्य एवं समाज सुधारक गणाधिपति श्री तुलसी का ८३ वर्ष की आयु में विगत २३जून को गंगाशहर (राजस्थान) में आकस्मिक रूप से हृदयगति रुक जाने से निधन हो गया। राष्ट्र के अहिंसक एवं नैतिक चरित्रनिर्माण के लिये आपने अणुव्रत आन्दोलन की जो आधारशिला रखी वह आज पूरे विश्व में नैतिक उत्थान का महान् आन्दोलन बन गया है । दहेज प्रथा, नारी उत्पीड़न, बालविवाह, मृत्युभोज जैसी सामाजिक कुरीतियों को दूर कर सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक जीवन में मानवीय मूल्यों का व्यवहार कराना ही इस आन्दोलन का उद्देश्य है और इसे जन-जन तक पहुंचाने के लिये ही आपने समण एवं समणीवर्ग को न केवल देश के कोने-कोने में बल्कि विदेशों में भी भेजा।

जैन विद्या के व्यापक अध्ययन-अध्यापन, प्रचार-प्रसार हेतु लाडनूं में स्थापित जैन विश्व भारती, संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) आपके विद्या प्रेम का जीवन्त स्मारक है जहाँ जीवन विज्ञान एवं प्रेक्षाध्यान के रूप में सर्वथा नवीन विषय का अध्ययन-अध्यापन भी हो सकता है।

जैन धर्म का आज यही एक ऐसा सम्प्रदाय है जिसके सभी साधु-साध्वी एक ही आचार्य की आज्ञा में रहते हैं और ये सभी उच्चशिक्षा सम्पन्न हैं । इसका श्रेय गणाधिपति तुलसी जी को ही है।

अपने जीवनकाल में ही अपने सुयोग्य शिष्य युवाचार्य महाप्रज्ञ जी को तेरापंथ आम्नाय का आचार्य घोषित कर आपने एक और अविस्मरणीय परम्परा का सूत्रपात किया। गणाधिपति की पदवी जैन परम्परा में सर्वथा एक नवीन उपक्रम है जिसे तेरापंथ के वर्तमान आचार्य महाप्रज्ञ जी ने आपको प्रदान कर अपनी विनयांजलि प्रस्तुत की है। सचमुच तेरापंथ का यह व्यक्ति मात्र जैन सम्प्रदाय का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में आधुनिक युग का एक आश्चर्यजनक व्यक्तित्व बन गया है। यह सूरज अस्त नहीं हुआ बल्कि अपने क्रान्तिकारी विचारों एवं प्रयोगों के लिये सदैव जनमानस के लिये श्रद्धादीप बनकर पूरे विश्व को आलोकित करता रहेगा।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ परिवार गणाधिपति श्रीतुलसी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

पुस्तक समीक्षा

समणसुत्तं - जैन गीता, संकलन कर्त्ता - श्री जिनेन्द्र वर्णी, हिन्दी पद्यानुवादक- आचार्य श्री विद्यासागर जी, अंग्रेजी अनुवादक - न्यायमूर्ति टी. के. टुकोल तथा डॉ. के. के. दीक्षित, प्रकाशक - आमग प्रकाशन, जैनपुरी, रेवाड़ी (हरियाणा), मूल्य - (पृष्ठ सं. ४४८) ६० रुपये

वैदिक परम्परा में जो महत्त्व श्रीमद्भगवद्गीता का है, बौद्धधर्म में धम्मपद का है वही जैन समुदाय में 'समणसुत्तं' का है, अन्तर केवल इतना है कि भगवद्गीता तथा धम्मपद तो प्राचीनकाल से ही रचित-ग्रन्थ रूप में प्राप्त हैं किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ वर्तमान काल में विविध जैन आगम ग्रन्थों से सूक्तियों तथा धार्मिक नैतिक उपदेशों को संगृहीत कर निर्मित किया गया है। इस ग्रन्थ की, प्रतिपाद्य विषय के धार्मिक महत्त्व के अतिरिक्त एक विशेषता यह भी है कि इसका विषय जैनधर्म के सभी सम्प्रदायों- दिगम्बर, श्वेताम्बर, तेरापन्थी, स्थानकवासी तथा मूर्तिपूजक-को समानरूप से मान्य है। अध्यात्मतत्त्व तथा नैतिकतत्त्व से ओतप्रोत इस ग्रन्थरत्न में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड, पञ्चास्तिकाय, द्रव्यसंग्रह, गोमट्टसार आदि विविध ग्रन्थों की सुन्दर लोकप्रिय और परमोपयोगी गाथाएं संगृहीत की गई हैं।

'समणसुत्तं' के निर्माण में मूल प्रेरणास्रोत प्रसिद्ध समाजसेवी तथा सर्वसेवासंघ के अधिष्ठाता आचार्य विनोबा भावे हैं। पच्चीस सौवें वीर निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने कहा था "मैने कई दफा जैनों से प्रार्थना की थी कि जैसे वैदिक धर्म का सार गीता में मिलता है, बौद्धों का धम्मपद में मिलता है जिसके कारण ढाई हजार साल के बाद भी बुद्ध का धर्म लोगों को ज्ञात है वैसा ही जैनों का भी होना चाहिये।" इसी से प्रेरणा प्राप्त कर श्री जिनेन्द्र वर्णी जी ने अथक परिश्रम से समस्त जैन ग्रन्थों के सागर-मन्थन से प्रस्तुत "श्रमणसूक्तम्" नामक नवनीत निकाला, जिसकी सभी जैन सम्प्रदायों में लोकप्रियता सिद्ध हुई है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सर्वसेवा संघ, वाराणसी से हुआ था, उसी को आधार मान कर प्रस्तुत प्रकाशन किया गया है।

इसमें ७५६ गाथाएँ हैं। प्रत्येक गाथा के नीचे उसकी संस्कृत छाया भी दी गयी है। जिसके कारण संस्कृतज्ञों को गाथा का अर्थ समझने में सुविधा हो गई है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गाथा का हिन्दी में छन्दोबद्ध अनुवाद भी दिया गया है और अन्त में

अंग्रेजी अनुवाद है । गाथाएँ चार खण्डों में विभाजित हैं - ज्योतिर्मुख, मोक्षमार्ग, तत्त्वदर्शन और स्याद्वाद । उदाहरणार्थ कुछ गाथाएँ इस प्रकार हैं - सप्तभङ्गी नय से सम्बद्ध गाथा है -

अत्थि त्ति णत्थि दो विय, अवत्तव्वं सिएण संजुत्तं ।
अव्वत्तव्वा ते तह, पमाणभङ्गी सुणायव्वा ।।
(अस्तीति नास्ति द्वावपि च अवक्तव्यं स्याता संयुक्तम् ।
अव्यक्तव्यास्ते तथा प्रमाणभङ्गी सुज्ञातव्या ।।)

हिन्दी अनुवाद- स्यात् अस्ति,स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति-नास्ति च अवक्तव्य-इन्हें प्रमाण सप्तभङ्गी जानना चाहिए ।

हिन्दी छन्दोबद्ध अनुवाद - स्यादस्ति नास्ति उभयावक्तव्य चौथा
भाई त्रिधा अवक्तव्य तथैव होता ।
यों सप्तभङ्ग लसते परमाण के हैं
ऐसा कहें जिनप आलय ज्ञान के हैं ।।

इस ग्रन्थ को 'जैनगीता' भी नाम दिया गया है । इस सन्दर्भ में 'गीता' शब्द की व्युत्पत्ति 'गै' धातु से न कर 'गी:' इस वाणी के वाचक शब्द से तल् प्रत्यय लगाकर की गई है । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार भूमिका में की गई है- जैनस्य गी: (वाणी) इति जैनगी : तस्या: भाव: जैनगीता ।

गाथाओं की संस्कृत छाया में यत्र-तत्र अशुद्धियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं । जैसे - पन्थानौ के लिये 'पथौ' शब्द (गाथा ९१)

उड्ढमधेतिरियं पि की छाया करने में अधस् को अव्यय नहीं मानकर लिखा गया । - "ऊर्ध्वमधेस्तिर्यगपि च" । इसका शुद्धरूप होगा - ऊर्ध्वअधस्तिर्यगपि च (गाथा ३१९), गाथा (११३) में 'प्रेक्ष्य' के स्थान पर 'प्रेक्षित्वा' यह अशुद्ध रूप है । इस तरह की अनेक त्रुटियाँ इसमें मिलती हैं । इसके अतिरिक्त विसन्धिदोष भी अनेक स्थानों पर मिलते हैं । इन दोषों के बावजूद ग्रन्थ की उपयोगिता, गुणवत्ता तथा सर्वजनप्रियता निर्विवाद है । पुस्तक की छपाई और साजसज्जा उत्तम है । लेखक और प्रकाशक हार्दिक बधाई के पात्र हैं ।

प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे
भू० पू० अध्यक्ष, प्राकृत भाषा
एवं साहित्य विभाग, पार्श्वनाथ विद्यापीठ

श्रीसमयसारविधान : प्रस्तोता: श्रीराजमल पवैया, संपा० डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच; संयोजक तथा प्रकाशक : श्री भरतकुमार पवैया, तारादेवी पवैया ग्रन्थमाला, ४४, इब्राहीमपुरा, भोपाल - ४६२ ००१; संस्करण : प्रथम, सन् १९९५ ई०; वीर-संवत् २५२१; पृ० सं० ४७२ ; मूल्य: पच्चीस रुपये ।

जैनशास्त्र के अध्ययन-अनुशीलन के क्षेत्र में शास्त्रदीक्षित काव्यमर्मज्ञ विद्वान् श्रीराजमल पवैया के नाम का क्रोशशिलात्मक मूल्य है, जिन्होंने दिगम्बर-सम्प्रदाय के धर्म, दर्शन और आचार से सन्दर्भित शताधिक शास्त्रीय ग्रन्थों का कर्मकाण्डीकरण करके उन्हें जैन समाज की नित्य-नैमित्तिक पूजा-उपासना का अंग बना दिया है। प्राकृत जैनशास्त्र के आधिकारिक ग्रन्थों में शलाकापुरुषोपम आचार्य कुन्दकुन्द, के 'समयसार' का महत्त्व सर्वविदित और सर्वस्वीकृत है, जिसका प्राज्ञवर पवैयाजी ने "श्रीसमयसार विधान' के नाम से कर्मकाण्डीकरण किया है । इस रचना-विधि में पवैयाजी का पाण्डित्य तो प्रदर्शित हुआ ही है, उनका कवि और कर्मकाण्डाचार्य का भी विलक्षण व्यक्तित्व एक साथ उद्भावित हुआ है । पवैयाजी की रचना-पद्धति का प्रयोग-प्रकार 'समयसार' की दूसरी गाथा के प्रसंग में द्रष्टव्य है :

"प्रथम गाथा में समय का प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है, इसलिए यह आकांक्षा होती है, समय क्या है । अतएव पहले उस समय को ही कहते हैं :

१. जीवो चरित्तदंसणणाणंट्ठिदो तं हि ससमयं जाण ।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥२॥

२. ओं ह्रीं दर्शनज्ञानचरित्र स्वरूप-कारण-समयसाराय नमः ॥ कारण समयसार-स्वरूपोऽहं ।

छन्द मानव

जो दर्शन ज्ञान चरित में थित हैं निश्चय से स्वसमय ।
जड़ पुद्गल कर्म प्रदेशों में थित हैं वही परसमय ॥
निज समयसार वैभव को अंतर में प्रगटाऊँगा ॥
मैं कारण कार्य समय हूँ आपूर्ण सौख्य पाऊँगा ॥
पर समयी जो होते हैं, वे भवपीड़ा पाते हैं ।
जो स्वसमयी होते हैं, वे सुख अनन्त पाते हैं ॥
निज समयसार की महिमा प्रभु अन्तरंग में आए ।
मैं समयसार बन जाऊँ भव बन्धन सब कट जाए ।

ओं ह्रीं पूर्वरंग-समन्वित श्रीपरमागम समयसाराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।"

प्रायः यही प्रक्रिया या पद्धति भिन्न मान्त्रिक पुष्पिकाओं के साथ "समयसार' की समग्र गाथाओं में अपनाई गई है। "समयसार' का अर्थ है - सिद्धान्त का निचोड़। 'विधान' के प्रस्तोता ने समस्त कृति की गाथाओं को कुल दस अधिकारों या प्रकरणों में वर्गीकृत किया है। अमृतचन्द्र के अनुसार कुल गाथाएं ४१५ हैं और पवैयाजी ने इसी संस्करण को स्वीकृत किया है। वर्गीकरण की प्रक्रिया इस प्रकार है:

गाथा सं० १ से ३८ तक	:	अर्घ्यावलि श्रीपूर्वरंगाधिकार-पूजन
,, ,, ,, ३९ से ६८ तक	:	श्री जीवाजीवाधिकार-पूजन
,, ,, ,, ६९ से १४४ तक	:	श्री कर्त्ता-कर्माधिकार-पूजन
,, ,, ,, १४५ से १६३ तक	:	श्री पुण्यपापाधिकार-पूजन
,, ,, ,, १६४ से १८० तक	:	लघुपीठिका श्री आस्रवाधिकार-पूजन
,, ,, ,, १८१ से १९२ तक	:	लघु० अर्घ्या० श्री संवराधिकार-पूजन
,, ,, ,, १९३ से २३६ तक	:	श्री निर्जराधिकार-पूजन
,, ,, ,, २३७ से २८७ तक	:	श्री बन्धाधिकार-पूजन
,, ,, ,, २८८ से ३०६ तक	:	श्रीमोक्षाधिकार-पूजन
,, ,, ,, ३०८ से ४१५ तक	:	श्रीसर्वविशुद्धज्ञानाधिकार-पूजन

परिशिष्ट के रूप में स्याद्वादाधिकार है, जिसमें जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शित्व, सर्वज्ञत्व आदि सैंतालीस शक्तियों के स्वरूप निरूपित हैं और सबसे अन्त में शान्ति पाठ तथा क्षमापना-पाठ है।

छन्दःशास्त्र के मर्मज्ञ श्रीपवैयाजी ने पूजन और अर्घ्य के विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक सन्दर्भों की अवतारणा विविध छन्दों में आबद्ध भजनों और गीतों के माध्यम से की है। पवैयाजी द्वारा यथाप्रयुक्त छन्दों में मानव, ताटंक, रोला, दोहा, वीर, गीतिका, हरिगीता, विधाता, चान्द्रायण, तिलोकी चान्द्रायण, पंचचामर, जोगी रासा या रास आदि हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में काव्योचित गुणों के समाहार की विलक्षण शक्ति के विस्मयकारी दर्शन होते हैं। कुल मिलाकर इस ग्रन्थ में काव्य, गीत, पूजा-पुरश्चरणविषयक कर्मकाण्ड, तान्त्रिक मन्त्रविधान, आचार, धर्म, दर्शन-चिन्तन आदि के समेकित अध्ययन एकत्रित रूप में सुलभ हुए हैं, और फिर, 'मंगलाष्टक' (संस्कृत), मंगलपंचक (संस्कृत), अभिषेक-पाठ, अभिषेक-स्तुति, पूजापीठिका, मंगलविधान, अर्घ्य, स्वस्तिमंगल, श्रीनित्यमहपूजन, जयमाला, अष्टक, महाअर्घ्य, श्रीअष्टपाहुड, आशीर्वाद आदि शीर्षकों

से रचित गीतों में रसोच्छल पदशय्या, संगीतिक माधुरी, कमनीय कल्पना और मनोरम बिम्बों से आपूरित आपातरमणीय भाषिक सौन्दर्य के सरस आस्वाद भूयिष्ठ भाव से उपलब्ध होते हैं । माधवमालती छन्द में "महाअर्घ्य' शीर्षक से रचित गीत की कुछ काव्यभाषिक मोहक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं ; जिनमें हृदयावर्जक चाक्षुष बिम्बविधान हुआ है:

रात जब ढलने लगी तो ज्ञान की बरसात आयी ।
मधुरिमा पारी उषा की प्रभाती नव किरण लायी ।।
गान गाए भ्रमरदल ने कोकिला मृदु मुस्करायी ।
सलिल सरिता मदभरी अँगड़ाइयाँ लेती सुहायी ।।
लालिमा स्वर्णाभ होने के लिए आतुर दिखायी ।
भानु चित्र-विचित्र ऊगा उषा ने पायी विदायी ।
साम्य भावों की पवन चुपचाप आ निज में समायी ।
मौन सस्वर पाठ सुनकर आत्मा ने स्वछवि पायी ।।

इस गीतावतरण में काव्य और दर्शन का चित्तोह्लादक समाहरण हुआ है ।

इस मोक्षदायक ग्रन्थ के प्रस्तोता पवैयाजी ने समयसार की प्रत्येक मूलगाथा के काव्य-रूपान्तरण द्वारा गाथा की पारम्परिक व्याख्या की पुनर्व्याख्या तो की ही है, उसका पुनर्मूल्यांकन भी किया है । निश्चय ही, पवैयाजी का समग्र जैनशास्त्र के, कर्मकाण्डीय-पुनः प्रस्तवन का यह सारस्वत प्रयास अनुपम, अभूतपूर्व और पुरस्करणीय है ; क्योंकि जैनागम या जैनशास्त्र के माध्यम से पूजन-विधि का अपना धार्मिक मूल्य तो है ही,सर्वसाधरण के बीचं ज्ञानगम्य जैनशास्त्रों का धार्मिक भूमिका में साधारणीकरण जैनजगत् के लिए अभिनव श्लाघनीय उपलब्धि है ।

समयसार की महिमा का समुद्भावक सम्पादकीय वक्तव्य अतिशय ज्ञानोन्मेषक है। सजिल्द और कलावरेण्य शुद्ध मुद्रण से संवलित एवं विशद काव्यात्मक व्याख्या-वैभव से विभूषित 'समयसार' जैसे दुर्लभ ग्रन्थ को स्वल्प मूल्य में सुलभ करने के निमित्त तारादेवी पवैया प्रकाशन को जितना भी साधुवाद दिया जायेगा, कम होगा । प्रकाशक का यह मन्तव्य कि प्रस्तुत कृति 'तारादेवी पवैया प्रकाशन की अद्भुत अपूर्व महिमामय भेंट है, बिलकुल सत्य है ।

श्री रंजन सूरिदेव, पी०एन० सिन्हा कालोनी, भिखनापहाड़ी, पटना -६

किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया ? : लेखक - उपा० गुप्तिसागर मुनि; प्रकाशन - साहित्य भारती प्रकाशन ; प्राप्ति स्थान - उपाध्याय गुप्तिसागर साहित्य संस्थान, इंदौर (म०प्र०) - ४५२००५; द्वितीय संस्करण, १९९७ ; मूल्य- ४०; पृ० १९५+ १० पृ० (विविध) ; साईज - डिमाई : हार्ड बाऊण्ड ।

किसने मेरे ख्याल में दीपक जला दिया ? पुस्तक का यह शीर्षक चिन्तन की उस सृजनात्मकता का बोधक है जो जन-जन के मानस में पनपता रहता है । मन एक कोरे कागज एवं बिना तराशे हुए उस प्राकृतिक पत्थर के समान होता है जिसमें नवीनता के प्रहाण को प्राप्त करने के अनगिनत अवकाश होते हैं । हमारी भावनायें, संस्कार और वृत्तियां जो मानव मन की सहज प्रवृत्तियां हैं निरंतर गतिमान रहती है । प्राय: ये मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों को विचलित करती हैं । इन्हीं के कारण मनुष्य अन्तर्द्वन्द्वों के अथाह सागर में डूबने लगता है । इनसे बचने का एकमात्र साधन है - मन की एकाग्रता । मुनिश्री ने अपनी इस कृति में एकाग्रता की ओजस्विता पर पर्याप्त चिन्तन किया है ।

प्रस्तुत कृति जनसमस्याओं को केन्द्र में रखकर रची गई है । इसकी अनुक्रमणिका इस तथ्य की पुष्टि करते हैं । कुछ सन्दर्भों को यहाँ रेखाचित्र के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया गया है जो मुनिश्री की आधुनिक लेखन शैली पर प्रकाश डालता है । यह एक ऐसे सुलझे विचारक की भावनाओं को इङ्गित करता है जो नवीन विचारों का संवाहक होने के साथ-साथ आचार का भी धनी हो । जिसमें संवेदनशीलता का वह जागृत भाव हो जो क्रूरता, विषमता और स्वभाव की जटिलता जैसे अमानवीय कृत्य को समाप्त कर करुणा, समता और स्वभावगत सरलता जैसे मृदु भाव के प्रकाशन की क्षमता रखता हो । आदरणीय गुप्तिसागरजी ने अपनी इस कृति में इन्हीं बिन्दुओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है ।

यद्यपि यह ललित-निबंधों की एक संगृहीत कृति है, परंतु इसमें मानव के अन्तस् को झकझोरने की पूरी सामर्थ्य है । इसमें सुप्त-संवेदनाओं को जगाकर भौतिकता की चकाचौंध से चौंधियायी हुई आँखों को एक नवीन एवं सौम्य प्रकाश प्रदान करने की क्षमता है । भाषा अत्यंत सरल तथा विचारों को प्रवाह सुगम ह । यह कृति एक सार्थक प्रयास के रूप में स्वीकार की जा सकती है क्योंकि इसने विचारों के विविध अवधारणाओं के प्रासंगिक स्वरूप को बड़ी सहज और संप्रेषणीय शैली में अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न किया है ।

मुनिश्री की इस उत्कृष्ट कृति के लिए जनमानस सदैव उनका ऋणी रहेगा ।

डॉ० रज्जन कुमार

जिन वाणी-(सम्यग्दर्शन विशेषांक) सम्पादक- डॉ० धर्मचन्द्र जैन प्रकाशक- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, बापू बाजार, जयपुर-३, राजस्थान, संस्करण- अगस्त १९९६, वर्ष ५३- विशेषांक- मूल्य- ५०/- रुपये

प्रस्तुत पुस्तक में सम्यग्दर्शन पर अनैकान्तिक दृष्टि से विचार किया गया है । इसे विषय वैविध्य के कारण तीन खण्डों में विभाजित किया गया है । इसका प्रथम खण्ड शास्त्रीय विवेचनों से सम्बद्ध है जिममें सम्यग्दर्शन के स्वरूप, लक्षण भेदादि के साथ ही साथ सम्यग्दर्शन से संबंधित प्रश्नोत्तर भी विद्यमान हैं । इसमें जैन वाङ्मय में सम्यग्दर्शन, तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा में सम्यग्दर्शन का स्वरूप, कुन्दकुन्दाचार्य प्रतिपादित सम्यग्दर्शन का स्वरूप, श्रीमद् राजचन्द्र की दृष्टि में सम्यग्दर्शन आदि महत्त्वपूर्ण लेख भी सन्निहित हैं । द्वितीय खण्ड में - 'सम्यग्दर्शन : जीवन-व्यवहार' में प्रकाशित लेख संतों, मनीषियों एवं चिन्तकों द्वारा लिखित हैं । सम्यग्दृष्टि की प्राप्ति होने से जीव की दिनचर्या कैसे परिवर्तित हो जाती है इसका विवेचन इसमें सुलभ है। तृतीय खण्ड में उन लेखों को समाविष्ट किया गया है जिसमें यहूदी, ईसाई , इस्लाम एवं पारसी धर्मों में श्रद्धा के महत्त्व को दर्शाया गया है । इस विशेषांक में संगृहीत लेख शोधपरक होने के साथ ही साथ मनुष्य की जीवनचर्या से सीधे जुड़े होने से प्रस्तुत विशेषांक का महत्त्व और भी बढ़ जाता है । अतएव पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है । मुद्रण-कार्य निर्दोष है । सारगर्भित एवं आकर्षण भूमिका-लेखन हेतु सम्पादक धन्यवाद के पात्र हैं ।

जिन स्तोत्र संग्रह-संकलनकर्त्री एवं रचयित्री-गणिनी आर्थिकी ज्ञानमती माताजी, प्रकाशक-दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) उ०प्र०, प्रथम संस्करण- जून १९९२, आकार-डिमाई, हार्ड बाउण्ड, पृ. ५३२, मूल्य -६४ रुपये ।

मानव अपने चरमलक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय करता है । अन्ततः वह उस उपाय को अपनाता है जो सरल एवं सहज हो । सम्भवतः जनसामान्य की इसी धारणा को ध्यान में रखकर अधिकांश उपदेष्टा भक्ति-मार्ग को ही प्रमुखता प्रदान करते हैं । इसी क्रम में माताजी ने जिन स्तोत्र संग्रह' नाम पुस्तक की संरचना की । प्रस्तुत संग्रह में विभन्न आचार्यों एवं स्वयं उनके द्वारा विरचित स्तुतियाँ संगृहीत हैं ।

उक्त संग्रह छः खण्डों में विभाजित है । इसमें द्वितीय खण्ड से लेकर चतुर्थ खण्ड की सम्पूर्ण रचनाएँ माताजी द्वारा विरचित हैं । सामान्य रूप में सभी खण्डों की अपनी

विशेषता है किन्तु तृतीय खण्ड में हिन्दी के आठ शम्भुछन्दों में जिनमाता के सोलह स्वप्न एवं स्वप्नफल का सुन्दर वर्णन तथा चतुर्थखण्ड में 'कल्याणकल्पतरु' नामक स्तोत्र में एक सौ चौवालीस छन्दों का प्रयोग मनोहारी है। 'चतुर्विंशतितीर्थङ्करस्तोत्र' में 'अर्थोंदण्डक ' छन्द का प्रयोग तथा भगवान् आदिनाथ की स्तुति में 'एकाक्षरी छन्द का प्रयोग भी अपने आप में विलक्षण है जो उनकी लेखनशक्ति, कल्पनाशक्ति, ज्ञानशक्ति और भक्ति की गहराई को दर्शाती है। हम उनके उक्त गुणों से प्रभावित होकर उन्हें नमन करते हैं।

पुस्तक का मुद्रण कार्य निर्दोष एवं साज-सज्जा सन्तोषजनक है। चूँकि पुस्तक में प्रभु की वंदनाएँ संगृहीत हैं अतएव यह सभी के लिए संग्रहणीय है।

डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी

अध्यात्मपद पारिजात, संपादक - डा० कन्छेदी लाल जैन । प्रकाशक - श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी -५

'अध्यात्मपद-पारिजात' एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसमें १६वीं सदी से लेकर २०वीं सदी तक के प्रमुख हिन्दी जैन भक्त कवियों की रचनाएँ संकलित हैं । इन पदों के लेखक वे कवि हैं जिन्होंने पूर्ववर्ती प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के मूल जैन साहित्य का गहन अध्ययन कर उनका दीर्घकाल तक मनन एवं चिन्तन किया है, तत्पश्चात् अपने चिंतन का विविध संगीतात्मक स्वर लहरी में चित्रण किया है ।

यद्यपि संगृहीत पदों का समय वही है जो हिन्दी के काल विभाजन के अनुसार रीतिकाल के अन्तर्गत आता है, जिसमें महाकवि बिहारी देव, घनानन्द द्वारा श्रृंगाररस में सिक्त रचनाओं की प्रमुखता रही । पर इस संगृहीत पदों में कवियों ने आत्मगुणों के विकास, समस्त प्राणियों के कल्याण तथा सम्प्रदाय-भेद, जातिभेद, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर तथा देशी-विदेशी के भेद-भाव से ऊपर उठकर समता एवं सर्वधर्म-समन्वय की भावना पर जोर दिया है । अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, स्याद्वाद एवं अनेकान्त के सिद्धान्तों को जीवन में उतारने पर विशेष बल दिया है । भाषा की दृष्टि से इन पदों पर ब्रज, राजस्थानी, मराठी, बुन्देली का प्रभाव अवश्य है, पर वे सभी हिन्दी पद हैं। प्रत्येक पद के फुटनोट में शब्दों के अर्थ होने से पदों को समझना अत्यन्त सरल व सुबोध हो गया है । इन पदों में अध्यात्म और संगीत का अनूठा समन्वय है । दर्शन के गूढ़ से गूढ़तर विषयों को भी सरल शब्दों में समझाने की अद्भुत शक्ति है । इनमें जिनस्तुति, गुरुस्तुति सम्यग्दर्शन, कर्मफल, बधाई-गीत, होली, संसार-असार व सप्त व्यसन आदि समस्त विषयों को लिया गया है । ये पद भक्ति, नीति, आचार और वैराग्य की शिक्षा के साथ-साथ मानव को सावधान कर आत्मलोचन प्रवृत्ति को जगाने का कार्य करते हैं ।

संगृहीत सभी पद गेय हैं, गीतिकाव्य की पद्धति पर आधारित हैं । इनके वर्ण विन्यास में जहाँ एक ओर कोमल कान्त पदावलि, स्वाभाविक और सरल भाषा शैली है वहीं दूसरी ओर वे संगीत की मधुरिमा से ओतप्रोत हैं । तुक, गति, यति और लय के साथ नाद सौंदर्य का सुन्दर समन्वय है ।

प्रस्तुत संग्रह के प्राय: सभी कवि जैसे, बनारसीदास, भैया भगवतीदास, भूधर दास, दौलतराम, और भागचन्द्र संगीत के पारखी कवि हैं । इनके पद शास्त्रीय राग-रागिनियों पर आधारित हैं, जैसे राग सांरग, बिलावल, यमन, रागकली, काफी, धनाश्री, केदार, आसावरी, पीलू, मल्हार आदि । पदों के ऊपर राग के नाम के साथ-साथ कहीं-कहीं ताल का उल्लेख भी है यथा-पृष्ठ ५ पर पद संख्या १२ में, राग सोरठ एक तालो

चंदाप्रभु देव देख्या दुख भाग्यौ ।
या
पृष्ठ ५० पर पद संख्या १४८ में,
राग ललित तितालो
हो जिनवाणी जू तुम मोकों तारोगी ।

कहीं-कहीं किसी पद में राग और ताल का क्रम उल्टा हो गया है जैसे- पृष्ठ ९ पर पद संख्या २८ में और पृष्ठ ३९ पर पद संख्या ११५ में । यहाँ राग दीपचंन्दी परज छपा है जो राग परज लाल दीपचन्दी होना चाहिए था । इसी प्रकार पृष्ठ ७७ पर पद संख्या २२४ में राग दीपचन्दी सोरठ छपा है, जिसकी जगह राग सोरठ ताल दीपचन्दी होना चाहिए । कुछ पदों पर राग के नाम के स्थान पर ताल का नाम छपा है जैसे पृष्ठ ८५ पर पद संख्या २४४ पर राग दीपचन्दी लिखा है । इसी प्रकार पृष्ठ ९८ पर पद संख्या २७९ और पदसंख्या २८१ पर राग दीपचन्दी छपा है जो गलत है । दीपचन्दी राग नहीं होता अपितु १४ मात्रा का ताल होता है । यदि राग की जगह ताल दीपचन्दी होता तो ठीक रहता । इन २-४ गल्तियों को छोड़ कर संग्रह सुन्दर बन पड़ा है । इसमें थोड़ी सी एक कमी जो मुझे दिखाई देती है वह यह कि राग, ताल के साथ-साथ कुछ पदों का स्वरलिपिबद्ध वर्णन होता तो इस संग्रह में चार चांद लग जाते । जो सिर्फ सात सुरों को गाना या बजाना भर जानता है, जिसे राग विशेष की पूरी जानकारी भी नहीं है वह भी उन पदों को ज्यों का त्यों गा सकता था, जैसा रचयिता स्वयं गाना चाहता है । स्वरलिपिबद्ध पद होने से पुस्तक की पृष्ठ संख्या अवश्य कुछ अधिक हो जाती पर संगीत का थोड़ा सा भी ज्ञान रखने वाला विद्यार्थी इन पदों को आसानी से ज्यों का त्यों गा बजा सकता था ।

अंत में मैं यही कहना चाहूंगी कि सूर, मीरा, कबीर के पद की भाँति इस संकलन के पद भी सरल सुबोध हैं । जन-जन को भाव विभोर करने में समर्थ हैं । गागर में सागर भरे हुए हैं । प्रो० डॉ. कन्छेदी लाल जैन व श्री ताराचन्द जैन बधाई के पात्र हैं, जिनके अथक प्रयास से हमें १६ से २० शती के कवियों का यह संग्रह पढ़ने को मिला ।

श्रीमती ब्रजरानी वर्मा
C/O पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ का अभिनवतम वैज्ञानिक प्रकाशन

साइन्टिफिक कन्टेन्ट्स इन प्राकृत कैनन्स (अंग्रेजी), लेखक- डॉ. नन्दलाल जैन, पृष्ठ संख्या ५८४, मूल्य रु० २००, (पेपर बैक, रु० ३०० (हार्डबाउन्ड) १९९६

विद्यापीठ से प्रकाशित होने वाले शोधपरक ग्रन्थों की शृंखला में जैन विद्या के वैज्ञानिक पक्षों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने वाला यह अभिनवतम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शोध-योजना के अन्तर्गत 'प्राकृत आगमों में उपलब्ध वैज्ञानिक मान्यताओं' पर डॉ. नन्दलाल जैन द्वारा किये गये शोध का परिणाम है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राकृत आगमों में उपलब्ध भौतिकी, रसायन, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, आहारविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित वैज्ञानिक मान्यताओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में १७ अध्याय, १२९ सारिणी, ८८० सन्दर्भ एवं ५ चित्र हैं। तीस उदाहरण देकर वैज्ञानिक मान्यताओं के समान धार्मिक मान्यताओं की परिवर्धनीयता का संकेत दिया गया है। सोदाहरण यह भी बताया गया है कि अनेक जैन मान्यताएँ सैद्धान्तिक दृष्टि से समसामयिकत: श्रेष्ठतर हैं और उनके भौतिक विवरणों को आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणों ने पूरकता प्रदान की है।

इस ग्रंथ से ग्रंथलेखन की नयी विधा और दृष्टि का तो सूत्रपात होगा ही अनेक शोध दिशाएं भी प्रस्फुटित होगीं। इस ग्रन्थ का अनौपचारिक विमोचन जैन एकेडेमिक फाउंडेशन ऑफ नार्थ अमेरिका की सिनसिनाटी की बैठक में किया गया, जहाँ उपस्थित अनेक देशों के जैन विद्या मनीषियों ने इस प्रकाशन की प्रशंसा की। यह ग्रंथ जैनविद्या के विद्यार्थियों, शोधार्थियों, विद्वानों एवं जिज्ञासुओं के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है। पार्श्वनाथ विद्यापीठ की इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रणयन के लिए लेखक को बधाई।

डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय, प्रवक्ता - जैन विद्या विभाग, पार्श्वनाथ विद्यापीठ।

व्यवहारभाष्य-संघदासगणि विरचित; संपादिका - श्रमणी कुसुमप्रज्ञा; प्रकाशक- जैनविश्वभारती, लाडनूँ; (राजस्थान); प्रथम संस्करण १९९६ ई० साइज-डबल डिमाई; पृष्ठ १४२+४४६+२६३, मूल्य-७०० रुपये

जैन मुनि की आचारचर्या और प्रायश्चित्त सम्बन्धी अर्धमागधी साहित्य में छेदसूत्रों का विशिष्ट स्थान है। इन छेदसूत्रों के रचयिता आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) माने जाते हैं। यद्यपि छेद सूत्रों में आचार के नियमों और उनका उल्लंघन करने पर दिये जाने वाले

प्रायश्चित्तों का विवरण है, किन्तु ये आचार नियम और उनके उल्लंघन की दशा में की जाने वाली प्रायश्चित्तव्यवस्था निरपेक्ष नहीं हो सकती, उसमें देश, काल, व्यक्ति, परिस्थिति आदि अनेक तथ्यों का विचार आवश्यक होता है। इन्ही सब बातों की स्पष्टता को लक्ष्य में रखकर इन छेदसूत्रों पर भाष्यों की रचनाएं हुईं। भाष्य मुख्य रूप से इस बात पर विचार करते हैं कि किन परिस्थितियों में, किस प्रकार के व्यक्ति को, किस प्रकार का आचरण करना चाहिए अथवा किन परिस्थितियों में किन आचार नियमों के उल्लंघन में, किस व्यक्ति को किस प्रकार का प्रायश्चित्त दिया जाना चाहिए। छेदसूत्रों पर रचे गये भाष्य वस्तुतः जैन आचार की विस्तृत व्याख्यायें ही हैं। भाष्य साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों में आवश्यकभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहार-भाष्य, निशीथभाष्य आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यवहार-भाष्य में चार हजार छः सौ चौरानबे (४६९४) गाथायें हैं। इसमें न केवल जैन आचार और प्रायश्चित्त-व्यवस्था सम्बन्धी सामग्री है अपितु जैन इतिहास, संस्कृति और कथा-साहित्य से सम्बद्ध विपुल सामग्री भी उपलब्ध है। व्यवहारभाष्य का उसकी मलयगिरि टीका के साथ प्रकाशन आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व हुआ था। यह ग्रन्थ लम्बे समय से अनुपलब्ध था और दो-चार पुस्तकालयों को छोड़कर यह सामान्यतया अध्येताओं और पाठकों के लिये दुष्प्राप्य ही बन गया था। जैन विश्वभारती, लाडनूं ने समणी कुसुमप्रज्ञा जी द्वारा इसे सम्यक् प्रकार से सम्पादित करवा कर प्रकाशित किया, एतदर्थ विद्वत्वर्ग उनके इस उपकार के प्रति चिर आभारी रहेगा। आज के युग में जैन परम्परा में ग्रन्थों का प्रकाशन तो बहुत हो रहा है, किन्तु मूल-ग्रन्थों के प्रकाशन के प्रति उपेक्षा ही हो रही है। ऐसी स्थिति में व्यवहारभाष्य का पुनर्प्रकाशन एक आह्लादजनक सुखद सूचना है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन निश्चय ही एक चुनौतीपूर्ण दायित्व था। समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने अपनी अल्पवय में ही इतने महान दायित्व को स्वीकार कर उसे सम्यक् रूप से सम्पन्न किया है। इसके लिये निश्चय ही वे बधाई की पात्र हैं। उन्होंने पाठों को सम्यक् प्रकार से संशोधित किया है। वस्तुतः उनके इस श्रम का अनुभव तो वही व्यक्ति कर सकता है जिसने हस्तप्रतों के आधार पर पाठसंशोधन किया हो। पाठान्तरों की अवस्था में कौन सा पाठ सम्यक् होगा यह निर्णय कर पाना सामान्य व्यक्ति का कार्य नहीं है। विशेषरूप से विविध शब्द रूपों वाली प्राकृत भाषा के मूलग्रन्थों के पाठ संशोधन में तो और भी कठिनाइयां हैं। भाषा और विषय का सम्यक् ज्ञान तो चाहिए ही किन्तु उसके साथ-साथ कालक्रम से शब्द रूपों में हुए परिवर्तन और परम्परागत देशी और पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान भी आवश्यक होता है। प्रस्तुत सम्पादन में उन्होंने इन सभी पक्षों पर पूरा ध्यान दिया है। कुसुमप्रज्ञा जी ने अपनी प्रज्ञा का उपयोग इस महान ग्रन्थ के सम्पादन में कर के युवा अध्येताओं के सामने एक आदर्श प्रस्तुत

किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में दिया गया सम्पादकीय जहाँ इसके वैज्ञानिक दृष्टि से किए सम्पादन को स्पष्ट करता है वहीं भूमिका ग्रंथ की विषयवस्तु का संक्षिप्त रूप से परिचय करा देती है। अत: दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ग्रन्थ के अन्त में गाथानुक्रम, विशिष्ट शब्दों की व्याख्यायें और ग्रन्थ में आयी हुई लगभग १३५ कथाओं का संक्षिप्त विवरण ग्रन्थ के महत्त्व में अभिवृद्धि करते हैं और सम्पादक की विषय में गहरी पैठ को सूचित करते हैं। परिशिष्ट क्रमांक १३ में उन्होंने व्यवहारभाष्य की गाथाओं का निशीथभाष्य, आवश्यकभाष्य, जीतकल्पभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, पंचकल्पभाष्य आदि के साथ एक तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है जो निश्चय ही सम्पादिका का तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण अवदान माना जा सकता है। गणाधिपति तुलसीजी आचार्य, महाप्रज्ञ जी और मुनि श्री दुलहराजजी भी निश्चित रूप से अभिवंदना के पात्र हैं जिनके निर्देशन में यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्यक् रूप से सम्पन्न हुआ है।

मुद्रण और साजसज्जा आकर्षक है। किन्तु ग्रन्थ का जो ७०० रु० मूल्य रखा गया है वह अधिक लगता है। इसके कारण यह ग्रन्थ विद्वानों और अध्येताओं के लिए दुलर्भ बन कर ही नहीं रह जाये। जैन विश्व भारती से अनुरोध है कि इस के मूल्य में अध्येताओं और सामाजिक संस्थाओं के लिए कमी करे।

डॉ० सागरमल जैन

जैन आगम : वनस्पति कोश प्रवाचक: गणाधिपति तुलसी; प्रधान संपादक: आचार्य महाप्रज्ञ; सम्पादक : मुनि श्रीचन्द्र 'कमल', प्रकाशक: जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान), प्रथम संस्करण १९९६; साइज - डबल क्राउन; जिल्द -हार्ड बैक ; पृ० ३४७+११ मूल्य -३०० रु०/- ।

वनस्पतियों का विचित्र संसार है। यह विविध रूपों में इस जगतीतल पर चारों तरफ फैला हुआ है। यह पृथ्वी, जल, वायु सभी जगह पाया जाता है। कभी यह तन्तु के रूप में दिखाई पड़ता है, तो कभी विशाल शाखाओं से युक्त विस्तृत भू-भाग पर फैले वृक्ष के रूप में। कभी फूलों के रूप में विविध रंगों की छटा बिखेरता है तो कभी विविध प्रकार के फल प्रदान कर अपनी विचित्रता का भान कराता है। जैनागमों में वनस्पति के इन विविध रूपों का उल्लेख हुआ है जिन्हें "जैन आगम: वनस्पति कोश" में संकलित करने का प्रयत्न किया गया है। इस कोश में आगमों में वर्णित वनस्पति के विविध रूपों के प्राकृत शब्दों को संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

इसके साथ ही साथ उनके सामान्य लक्षणों को भी विवेचित किया गया है। वनस्पति के विविध रूपों को आयुर्वेदीय ग्रन्थों से सन्दर्भ लेकर उनके विभिन्न पर्यायों को भी उद्धृत किया गया है। आगमविज्ञ गणाधिपति तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन ने इस कोश की प्रामाणिकता को बल प्रदान किया है। आयुर्वेदीय विद्या में रुचि रखने वाले श्रीमान् झूमरमल जी की दृष्टि ने इसे उपयोगी बनाया है। मुनि श्रीचन्द जी 'कमल' ने इस कोश को अत्यंत श्रमपूर्वक तैयार किया है। स्थान-स्थान पर चित्रों के कारण इस कोश ग्रन्थ की महत्ता द्विगुणित हो गयी है।

यह एक उपयोगी कोश है। मुद्रण साफ और सुन्दर है। कवर की साज-सज्जा में अंतर्राष्ट्रीय मानकों के प्रयोग का प्रयत्न किया गया है। प्रयास सराहनीय है। विद्वत् जगत् में इस कोश का निश्चय ही स्वागत होगा।

डॉ० रज्जन कुमार

श्रीभिक्षु आगम विषयकोश- भाग एक वाचनाप्रमुख गणाधिपति तुलसी, प्र.सं.- आचार्य महाप्रज्ञ, सं०- साध्वी विमलप्रज्ञा, साध्वी सिद्धप्रज्ञा, प्रका०- जैन विश्वभारती इंस्टीच्यूट, लाडनूं (राज०), १९९६, आकार-रायल आक्टो सजिल्द, पृ० ४३, ७५६; मूल्य ५००/- रुपये ·

प्रस्तुत कोश जैन विश्वभारती से जैन-विद्या के विविध पक्षों पर प्रकाशित-बहुमूल्य एवं अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थों की शृखला में एक गौरवमयी कड़ी है। जैन विश्वभारती के तपः पूत पावन प्राङ्गण में परमपूज्य गणाधिपति तुलसीजी एवं आचार्य महाप्रज्ञाजी की प्रेरणादायी निश्रा में वहाँ के अन्तेवासी साधक-साधिका एवं विद्वान् जैन-विद्या के अध्ययन-अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में कार्यरत लोगों के कार्य को सरल बनाने हेतु पूर्ण मनोयोग एवं सोद्देश्यपूर्ण ढंग से प्रयत्नरत हैं।

प्रस्तुत कोश में आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दी और अनुयोगद्वार को तथा इन आगमग्रन्थों पर उपलब्ध व्याख्या साहित्य को आधार बनाकर चुने गये १७८ विषयों का, मूल और हिन्दी अनुवाद के साथ, प्रतिपादन है। परम्परागत विषयों के साथ-साथ इसमें आधुनिक विषयो जैसे- परामनोविज्ञान, जो अतीन्द्रिय ज्ञान पर आधारित है, का भी विस्तृत निरूपण है।

सम्बद्ध आगमों की व्याख्याओं के मूल को हिन्दी अनुवाद सहित विषय-प्रतिपादन में प्रयोग करना इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। व्याख्याग्रन्थों की सामग्री का यत्र-तत्र प्रयोग कोश ग्रन्थों में (जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, जैन लक्षणावली आदि) हुआ है। परन्तु पूर्णरूप से और हिन्दी अनुवाद के साथ सामग्री का प्रस्तुतीकरण इस ग्रन्थ को अत्यन्त उपादेय बना देता है। आगमिक व्याख्या साहित्य की भी, जो अभी अनुवादादि

सहित उपलब्ध नहीं है, सामग्री को सुलभ कराने में इस कोश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी ।

इस कोश की यह भी विशेषता है कि इसमें जिस भी विषय को ग्रहण किया गया है, उसके सभी पक्षों को सम्यक् रूप से प्रतिपादित किया गया है । प्रस्तुत कोश में तीर्थंकर का ३१, कर्म का ३४, श्रुतज्ञान का २७ और अवधिज्ञान का २५ शीर्षकों का माध्यम से प्रतिपादन किया गया है ।

जीवन-वृत्त आदि से सम्बन्धित आकड़ों के यन्त्र भी कोश में संलग्न हैं तथा कहीं-कहीं स्थापनाओं और चित्रों का भी उपयोग हुआ है ।

कोश के अन्त में दो परिशिष्ट हैं । प्रथम परिशिष्ट में पाँचों आगम ग्रन्थों और उनकी व्याख्याओं में उपलब्ध ५०० कथाओं के ससन्दर्भ सङ्केत है । द्वितीय परिशिष्ट में उक्त आगमों एवं उनके व्याख्याओं में विश्लेषित दार्शनिक और तात्त्विक चर्चा-स्थलों का ससन्दर्भ सङ्केत हैं ।

श्री भिक्षु आगम विषय कोश का प्रथम भाग उत्कृष्ट विषय प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ कलेवर, साज-सज्जा एवं प्रकाशन की दृष्टि से उच्चस्तरीय है ।

प्रस्तुत कोश के आगामी भागों का विद्वत्समाज उत्सुकता से प्रतीक्षा करेगा ।

- डॉ० अशोक कुमार सिंह

अणुओगदाराइं वाचनाप्रमुख, गणाधिपति तुलसी, संपा०, आचार्य महाप्रज्ञ, प्रकाशक- जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, प्रथम संस्करण, १९९०पृष्ठ संख्या ४३१, मूल्य -४००/रु०

जैन आगम साहित्य के दो चूलिका सूत्रों, जिन्हें आगम साहित्य के हृदयस्थानीय अथवा शिरःस्थानीयसूत्र भी कहा जाता है, में अनुयोगद्वारसूत्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । आर्यरक्षित द्वारा रचित २१६२ गाथा परिमाम यह सूत्र मुख्यतः गद्य में रचित है । सम्पूर्ण ग्रन्थ को १३ प्रकरणों में विभक्त किया गया है । प्रथम प्रकरण में आवश्यक को निक्षेप पद्धति से अत्यन्त सहज ढंग से समझाया गया है । आवश्यकतानुसार इसमें निक्षेप के नियम आदि भी प्रदर्शित किए गये हैं । दूसरे प्रकरण में श्रुत और स्कंध के निक्षेप की विस्तृत चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि निक्षेप पद्धति ग्रन्थकार के मौलिक प्रतिपाद्य के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करती है । तीसरे प्रकरण में शास्त्र से परिचित होने के लिए उपक्रम अथवा उपोद्घात की आवश्यकता पर बल देते हुए उपक्रम के छः निक्षेप प्रदर्शित किये गये है । चौथे प्रकरण में उपक्रम और आनुपूर्वी के दस प्रकारों की चर्चा की गयी है । इस प्रकरण में नामानुपूर्वी, स्थापनानुपूर्वी एवं

द्रव्यानुपूर्वी का अनेक अवान्तर भेदों के साथ निरूपण किया गया है। पांचवें प्रकरण में क्षेत्रानुपूर्वी के वर्ण्य विषयों यथा-अधोलोक, तिर्यग्लोक एवं ऊर्ध्वलोक का वर्णन किया गया है। छठे प्रकरण में कालानुपूर्वी की चर्चा में काल के सूक्ष्मतम विभाग से सर्वाध्वा तक का निरूपण किया गया हैं। सातवें प्रकरण में उपोद्घात के प्रमुख अंग के रूप में नामपद का विस्तृत निरूपण किया गया है। आठवें प्रकरण में संगीत, व्याकरण, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है। साथ ही इसमें कृतिकानक्षत्र आदि कालगणना को भी विवेचित किया गया है। नौवें प्रकरण में प्रमाण की चर्चा के अन्तर्गत-द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण एवं भावप्रमाण में से द्रव्य एवं क्षेत्र प्रमाणों का निरूपण इस प्रकरण में किया गया है। दसवें प्रकरण में कालप्रमाण की चर्चा में समय की सुन्दर प्रज्ञापना की गयी है। ग्यारहवें प्रकरण में भावप्रमाण की चर्चा की गयी है। इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम प्रमाणचतुष्टय की विवेचना की गयी है। बारहवें प्रकरण में वक्तव्यता पर नयदृष्टि से विचार किया गया है। अंतिम तेरहवें प्रकरण में निक्षेप के नाम, द्रव्य, भाव आदि तीन प्रकारों का निरूपण किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनुयोगद्वारसूत्र के मूलपाठ के अतिरिक्त उसकी संस्कृत छाया एवं हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है, जिससे वर्ण्यविषयों का अभिगम सहजता से हो जाता है। रेखाचित्र के माध्यम से दी गयी विषय-सूची सम्पूर्ण प्रकरण के वर्ण्यविषय को पाठकों के सामने सहजता से प्रस्तुत करने में समर्थ है। प्रत्येक प्रकरण के प्रारम्भ में दिया गया आमुख उस प्रकरण से सम्बद्ध विषयों की सूचना के साथ अन्य आगमों से उनके अन्तर को यथास्थान स्पष्ट करता है एवं अन्त में दिया गया सूत्रानुसार टिप्पण विषयों के स्पष्टीकरण में सहयोगी है। अन्त में सम्पादक ने परिशिष्ट के अन्तर्गत, विशेषानुक्रम पदानुक्रम, टिप्पण-अनुक्रम, शब्द-विमर्श और विस्तृत सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची देकर मूलग्रन्थों के अनुवाद एवं अर्थ प्रकटन में एक नयी विधा का परिचय दिया है। सम्पादक अवश्य ही इसके लिए बधाई के पात्र हैं। प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियां कतिपय स्थानों पर रह गयी हैं जो प्रकाशन में अस्वाभाविक नहीं है। ग्रन्थ की साज-सज्जा आकर्षक एवं मुद्रणकार्य निर्दोष है। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है।

डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय

जागो मेरे पार्थ - महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर, प्रकाशक- जितयशा फाउंडेशन, ९ सी, एस्प्लानेड रोड ईस्ट, कलकत्ता - ६९, साईज-डिमाई, कवर-हार्ड बाउंड, संस्करण-१९९६, पृ० २०२; मूल्य ३० रुपये।

गीता विश्व की एक महान् कृति है। यह पथा-विमुख मनुष्य का मार्गदर्शन करती है। इसमें मानव के भीतर चल रहे ऊहापोह का समाधान इस रूप में किया जाता है कि वह जितेंद्रिय बन सके। आत्म-उत्थान कर सके। गीता के प्रमुख पात्र अर्जुन, जिसे पार्थ भी कहा जाता है, की मोहावस्था का भंजन श्रीकृष्ण द्वारा जिस प्रकार किया गया

आज वही स्थिति संसार के मानवों की हो रही है । उसे भी अपने मिथ्यात्व के सम्यक् निदान के लिए श्रीकृष्ण जैसे महाअवतार की आवश्यकता है । प्रस्तुत पुस्तक में महोपाध्याय चन्द्रप्रभसागर ने मनुष्य की कुछ ऐसी ही सामान्य समस्याओं का समाधान गीता के आलोक में करने का प्रयत्न किया है । गीता के हार्द का जैनीकरण रूप देना इस पुस्तक की विशेषता है । सामान्य जन के लिए यह पुस्तक लाभकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगी ।

डॉ० रज्जन कुमार

जैन कर्म सिद्धान्त और मनोविज्ञान - डॉ० रत्नलाल जैन, प्रकाशक- बी० जैन पब्लिशर्स (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, पृ०- २८१+(९), साईज-डिमाई, कवर-हार्ड बाउण्ड, मूल्य २५५/-

प्रस्तुत ग्रन्थ एक शोध-प्रबन्ध है जिसे मेरठ विश्वविद्यालय ने पी- एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत किया है । इसमें कुल ८ अध्याय हैं- भारतीय दर्शन में कर्म सिद्धान्त, जैन कर्म सिद्धान्त की विशेषताएं, कर्म बंध के कारण, कर्मों की अवस्थाएं, ज्ञान मीमांसा-आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में, भाव जगत्-आधुनिक मनोविज्ञान के परिपेक्ष्य में, शरीर संरचना-आधुनिक शरीर विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में एवं भाग्य-कर्म-रेखा को बदल सकते हैं ।

प्रत्येक अध्याय की सामग्री संकलन में लेखक ने अत्यंत श्रम किया है जो प्रशंसनीय है । जैन कर्म सिद्धान्त संबंधी मान्यताओं को आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के साथ तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न हुआ है । कहीं-कहीं यह तुलना अत्यंत, सार्थक एवं सामयिक लगती है तो कहीं-कहीं उनमें भटकाव भी आ गया है। यहाँ यह लगने लगता है कि लेखक ने बलपूर्वक प्राचीन मान्यताओं को आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर वरीयता देने का प्रयत्न किया है । उनका यह प्रयत्न कर्म-सिद्धांत की श्रेष्ठता को वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने की उनकी प्रवृत्ति का द्योतक है ।

ग्रंथ शोध-अन्वेषणों से पूर्ण है । परिश्रम सराहनीय है । विद्वत्-जगत् में इसका स्वागत होगा ।

डॉ० रज्जन कुमार

कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया- लेखक- पं० जगन्मोहन लाल शास्त्री प्रकाशक- निज ज्ञान-सागर शिक्षा कोश, मेडीक्योर लेबोरेट्री बिल्डिंग, प्रेमनगर, सतना (म०प्र०), प्रथम संस्करण- जून १९९३, पृष्ठ संख्या - ४४; मूल्य - तत्व जिज्ञासुओं के चिंतन हेतु ।

कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया के प्रस्तोता पं० जगन्मोहन लाल शास्त्री हैं, जो जैन-शास्त्र एवं चिन्तन के जाने माने विद्वान् रहे हैं । उन्होंने इस पुस्तक में कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है । उसी सिलसिले में उन्होंने

मिथ्यात्व और अकिंचित्कर को भी स्पष्ट किया है। ये दोनों शब्द आचार्य श्री विद्यासागर जी के प्रवचन में कभी व्यवहृत हुए थे, जिसमें उन्होंने मिथ्यात्व को अकिंचित्कर कहा था और उस पर बहुत से लोगों ने आपत्ति उठायी थी। उसी सिलसिलें में स्वर्गीय पं० फूलचन्द जी सिद्धांत शास्त्री द्वारा विरचित "अकिंचित्कर एक अनुशीलन" नामक पुस्तक भी उद्धृत है। जिसके संबंध में पं० जगन्मोहन जी ने स्पष्ट लिखा है - "आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज ने मिथ्यात्व को स्थिति अनुभाग डालने में अकिंचित्कर कहा। कुछ विद्वानों ने प्रसंगगत आचार्य श्री के अभिप्राय पर ध्यान न देकर यह अर्थ ग्रहण किया कि आचार्य श्री मिथ्यात्व को अकिंचित्कर कहते हैं जिसका अर्थ होता है मिथ्यात्व कुछ नहीं करता। प्रकरण के अनुसार उनके कहने का जो तात्पर्य था उस पर ध्यान न देते हुए उसका गलत अर्थ तथा प्रचार किया गया।"

इससे यह स्पष्ट होता कि पं० जी ने जो कुछ विवेचन प्रस्तुत किया है वह उनके स्वतंत्र चिन्तन पर आधारित है। किसी भी विषय पर पूर्वाग्रह रहित होकर स्वतंत्र विचार प्रस्तुत करना, विषय और उसके जिज्ञासुओं, सबके लिए न्यायोचित होता है। कर्मबन्ध और उसकी प्रक्रिया आकार की दृष्टि से एक छोटी सी पुस्तिका है परन्तु इसमें विवेचित विषय अत्यन्त सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण है। पुस्तक की छपाई एवं साज-सज्जा निर्दोष है। इस श्रेष्ठ रचना के लिए रचनाकार और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र हैं।

डॉ० सुधा जैन

जैनधर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की वैज्ञानिकत व्याख्यानकर्ता - श्री० लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्रकाशक - श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी-५, प्रथम संस्करण-सितम्बर १९९६, साइज- डिमाई पेपर बैक; पृष्ठ-३३; मूल्य २० रुपये।

पं. फूलचन्द्र शास्त्री व्याख्यानमाला -३ के अन्तर्गत प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन ने क्रमशः वस्तुनिष्ठ एवं व्यक्तिनिष्ठ एक सूत्री अध्ययन का पक्ष प्रदर्शित किया है। जिस प्रकार भौतिकी में अद्भुत क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेवाले वैज्ञानिक आइंस्टाइन ने कहा था कि बिना धर्म के विज्ञान अपंग है और बिना विज्ञान के धर्म अंधा है, उसी प्रकार प्रो० जैन से पूर्व जैन धर्म के सिद्धान्तों पर वैज्ञानिकता को छोड़ अन्य विभिन्न प्रकार से विचार तो किया जाता रहा किन्तु विज्ञान की दृष्टि से विचार नहीं किया गया था। प्रो. जैन ने वैज्ञानिक पक्ष को लेकर जैनधर्म-दर्शन के सिद्धान्तों पर विचार करके उस कमी को पूरा कर दिया। उक्त विषय पर उनके द्वारा दिये गये व्याख्यान उपर्युक्त पुस्तक में संगृहीत हैं। पुस्तक की साज-सज्जा आकर्षक है और यह सभी के लिए संग्रहणीय है।

डॉ० जयकृष्ण त्रिपाठी

Vidyapeeth's current publication

'Pearls of Jaina Wisdom, Compilation-Shri Dulichand Jain, Editors, Dr. - Sagarmal Jain, & Dr. S. P. Pandey, Publishers-Parshvanath Vidyapeeth & Research Foundation for Jainology, Madras 1997, Size - Demy, Rs. 120/=

PEARLS OF JAINA WISDOM - A TREASURE - TROVE OF JAINA WISDOM

'Pearls of Jaina Wisdom' is a compilation of inspiring *Sūtras* from the various Jaina texts, meticulously translated by Shri Dulichand Jain, Secretary, Research Foundation for Jainology, Madras. This book is a result of an indepth study of the vast Jaina *Āgamic* literature. by shri Dulichand Jain.

In today's fast-paced world, we are at the brink of personal and social crisis, and such a book helps us to integrate ourselves in the complex dimension of life. Having run after material consumption we have left behind the picture of the good life. We can't trust our social system, our present familial system offers us no feeling of well being or security, we are disillusioned by our present economic and legal system, we don't feel healthy despite all the medical advances, we are bewildered as changes creep upon us unawares.

The best and most effective way to cope with the changing trends is to create a personal change. Once a personal change is achieved, we can apply it much more effectively to all the areas of our life. To facilitate this change, the ancient seers have shown us a way of life which is ethical, honest and beneficial. Jainism is a religion which believes in the unique potentiality of each individual to find the divine within-the human beings. All the *Tīrthaṅkaras* were human beings who attained the position of Godhead by tapping their own inner resources. They propounded some eternal truths. These truths are timeless, they adapt and fit into the changing and shifting framework of life.

It is the timelessness of these truths that inspires people like Mr. Jain to bring out a book like 'Pearls of Jaina wisdom' for today's world. He belives that these aphorisms can be an answer to today's needs; it will help in creating an awareness and understanding of the basic

tenets of Jainism as propounded by Lord Mahāvīra.

The book is divided into two parts. In the first part, the author writes about the life and teachings of Lord *Mahāvīra* and introduces the readers the Jaina *Agamic* literature, thereby setting the background for the second part which is a collection of aphorisms from the sacred texts. The choice selection of the 650 aphorisms and their division into the 71 lessons clearly indicate the research work and the meticulous efforts of the author. The aphorisms selected are simple as well as reflective and thought provoking. 71 lessons are classified under the following 12 chapters: Precepts on the auspicious, Knowledge of the fundamentals, conquest of passions, mind, karma, learning, the path of liberation, the path of righteousness, reflections on the self etc. In this compilation, we really find a glimpse of that sublime thought which shall inspire mankind to tread the path of righteousness at all times.

The translation is simple and lucid. The wisdom underlying the ancient aphorisms is such that reading them regularly will show newer insights and greater application in life. These are truths about life, about birth and death, about happiness and sorrow, about success and failure, and most importantly, about our attitudes in life. They show us how to prioritise in life and work towards happiness and contentment.

Today there is a need to address the confusion between what one ought to do and what one would be inclined to do. A study of these aphorisms will not only make one a better person, but it can certainly provide us the solution of our practical problems. Such a study can help us in better understanding and classifying our own moral principles. It can lead us from blind, irrational beliefs and dogmas to logical scrutiny and critical reflective morality of one's own.

This book will be very useful for the research scholars as it contains index of all the *Sūtras,* a bibliography and a glossary of technical terms. The value of the publication is greatly enhanced by providing a reliable Roman transliteration. The writer's style is lucid, the impact provides a strong foundation about Jaina theories, capturing our minds by its detached and intellectual rendering..

Priya Jain
University of Madras

Name of the Book - ***Rāmapāṇivāda's Uṣāṇiruddhaṁ***, Editor - V. M. Kulkarni, Publisher - Sharadaben Chimanbhai, Educational Research Centre, Ahmedabad 380 004

It is a fine piece of Prakrit ornate poetry in the form of *Khaṅdakāvya* comprising four *Sargas* in 280 verses. It was originally edited by Prof. A. N. Upadhye and was published in the Journal of university of Bombay in 1941. The present edition under review is based on the same. The subject matter of the *Usāṇiruddhaṁ* has been drawn from the *Bhāgavata* the famous Mahāpurāṇa. The love story of the Uṣā and Aniruddha is also found in many other Sanskrit works like the *Viṣṇu Purāṇa*, *Harivaṁśa* and the *Padmapurāna*. Rāmapaṇivāda, the author flourished in the 18th century A.D i.e. in the last period of the Prakrit literature. The other important work by the same author is the *Kaṁsavaho*.

It has been written in the Mahārāṣṭrī Prakrit in the Vaidarbhī style though the use of long compound is also seen here and there. The metres used are *Anuṣṭubh, Drutavilambita, Puṣpitāgra, Upajāti* and *Vaitalīya*. The predominent *Rasa* is Ṣringāra, the poet is not satisfied with the prosaic narration. He has embellished it with the richness of poetic imagery and various *Alaṁkāras*. The influence of the Kālidāsa and other poets is also discrnible in it. The following verses can been compared in this context.

माया किमेसा सिविणं किमेअं किमिंदआलं हिअअब्भमो वा ।
जं दाणि सुंदेरणिवासभूमी चअत्थि णारीरअणं पुरो ये ।। उसा. १/४७

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमोनु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् । शाकुन्तल

The following are the fine illustrations of प्रतीयमानोत्प्रेक्षा And अपह्नुति respectively-

मा दे मुहेंदुणा होज्ज दिवा वि रअणिब्भमो ।
इअ एस विरिंचेण अंकितो रअणी करो ।।
यं वा कुमुदिणी विप्पवाससोअ मलीमसं ।
हिअअं से पआसेइ सच्छदाए कुदो मिओ ।। उसा० 4/ 58,59

The text is accompanied with the Sanskrit *chāyās*. According to Prof. Upadhye the Sanskrit *Chāyā* contrary to the usual practice precedes the Prakrit in the original text. It is doubtful whether the *chāyā* is also

written by the author, but the peculiarity about the *Chāyā* is that nearly all the verbal forms in the present tense in the text have been transformed into the past perfect tense like अधिरूरोह for अधिरोहई, अपवेत forवेवइ etc. the mesculine form like the निर्मक्षिक: and विवाहतन्त्र: (IV/44,45) are grammatically wrong. They should have been in neuter gender only. Such mistakes only compel us to conclude that the *chāyākāra* is not the poet himself because Rāmapanivāda the poet was also a grammarian being the commentator of प्राकृतप्रकाश. The book also contains the English translation which is literal and complete keeping in view the English idiom and all the spirit of that language.

It is a fine piece of poetic art. The Sanskrit Chāyā and the English translation have been definitely enhanced it readability and utility. The learned editor has helped the readers by giving some mythological Notes, the verse index and a short list of words with Sanskrit *Chāyā* though at one place (Page 141) the Chāyā प्रतिष्ठिति for पडिट्ठइ appears to be wrong because it should have been प्रतिष्ठते. The book is wroth possessing or enjoying. The readers will teel more than repaid.

S. C. Pande

पार्श्वनाथ विद्यापीठ को भेंट में प्राप्त पुस्तकों का विवरण

१. स्तुति सरोज	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
२. स्तुति शतक	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
३. पूर्णोदय शतक	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
४. आकिंचन्य : एक अनुचिंतन	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
५. कर विवेक से काम	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
६. सर्वोदय शतक	- आचार्य श्री विद्यासागर जी
७. श्रमण परपरामां आदर्श संत जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज	- डॉ० बारेलाल जैन
८. युगपुरुष आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज	- प्रो० शीलचन्द्र जैन
९. जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर (पुष्प-१)	- श्री तिलोक मुनि जी म. सा.
१०. जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर (पुष्प-२)	- श्री तिलोक मुनि जी म.सा.
११. धर्म नुं अंजन कर्मनुं मंजन याने षोडशक भाषानुवाद	- मुनि श्रीकल्पयशविजय जी म. सा.
१२. सम्राट अशोक : एक पुनर्मूल्यांकन	- डॉ० परमानन्द सिंह
१३. विद्या शतक	- प्रो० शीलचन्द्र जैन
१४. परमात्मा होने का विज्ञान	- बाबूलाल जैन
१५. प्राकृत एवं जैन विद्या शोध सन्दर्भ	- डॉ० कपूरचन्द जैन
१६.दिव्यध्वनि (आ. श्री विद्यासागर विशेषाकं) वर्ष १५	- मानद संपादक-श्री प्रकाश शाह
१७. दिव्यध्वनि (पू. श्री गणेश प्रसाद वर्णी विशेषांक) वर्ष १६	- मानद संपादक-श्री प्रकाश शाह
१८. दिव्यध्वनि (जीवन संगीत)	- प्रेरक-श्रद्धेय श्री आत्मानन्द जी
१९. राजस्थान के आधुनिक महाकवि आ० श्री ज्ञानसागर जी और उनकी साहित्य साधना	- मुनि क्षमासागर
२०. महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी रचित शोधविषयक शीर्षक	- प्रेरक-मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन